

64.9
923

रामचरणिका

83

DONATION

9
92

64.9
923

प्रेम आचार्य प्रियका विद्यालय, गुरुकुल कंगरी

64.1

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१२३

२६२३

गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय
कृपया पुस्तक के ऊपर कोई निशान आदि
न लगायें।

64.2

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१२३

पुस्तकालय

गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार

वर्ग संख्या.....

आगत संख्या.....८६८३

पुस्तक-विवरण की तिथि नीचे अंकित है । इस तिथि सहित ३० वें दिन यह पुस्तक पुस्तकालय में वापिस आ जानी चाहिए । अन्यथा ५० पैसे प्रति दिन के हिसाब से विलम्ब-दण्ड लगेगा ।

आचार्य विद्यादास देवदत्त स्मृति
स्मरणिका

ग्रंथ संग्रह



लेखक

रघुनन्दन प्रसाद

DONATION

सम्पादक : मधुसूदन साहा

8783

प्रकाशक

प्रकाश बन्धु

१०५/५४८, आनन्दबाग, कानपुर ।

ओम् प्रकाश

धर्म प्रकाश

रुद्र प्रकाश

१०५/५४८ आनन्द बाग

कानपुर

सम्पादक

मधुसूदन साहा

संकल्प संस्थान,

ए/९३ सेक्टर-१५

राउरकेला-३ (उड़ीसा)

आवरण शिल्पी

कु० मीरा निगम, एम० ए०

62.7
—
923

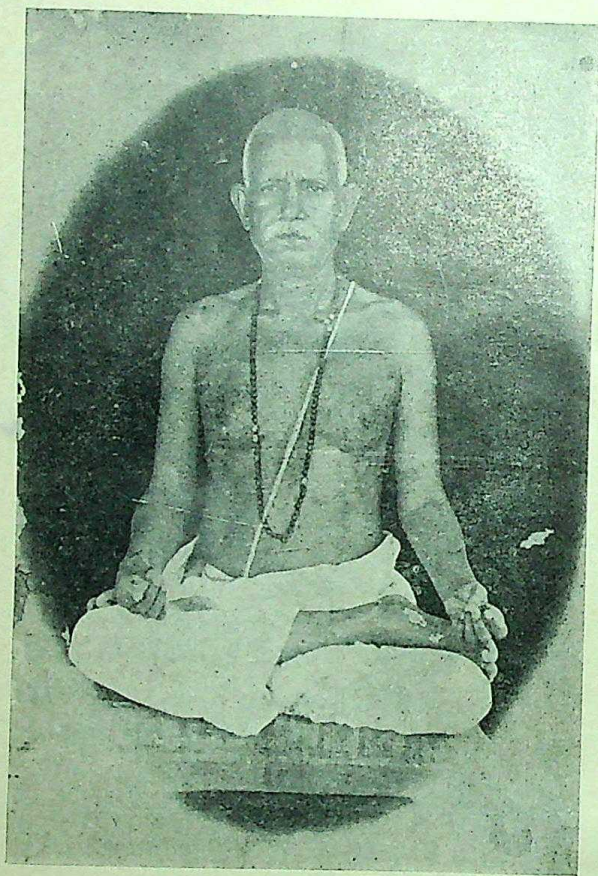
मुद्रक

शंकर प्रिन्टिंग प्रेस,

१०५/५०, प्रेमनगर, कानपुर

१९७१





श्रीवर पूज्य सद्गुरु
स्व० महात्मा भगवान सहाय जी
के
चरण कमलों में
ये भावनाएं श्रद्धापूर्वक समर्पित हैं ।

—रघुनन्दन प्रसाद

ओ॒उम् विश्वा॑नि दे॒व स॒वित॑र्दु॒रितानि॑ परा सु॒व ।

यद् भ॒द्रन्त॑न् आ सु॒व ॥

जिस देश में
जिस जाति में
न संगठन, न सुविचार है,
वह राष्ट्र है
बिल्कुल गिरा
उसका नहीं निस्तार है ।

स्मरणिका

क्रम

प्रस्तुतीकरण

आभार

विचार

उद्गार

कहानी

काव्यजलि

एक अपरिचित की ओर से

श्रद्धांजलि

जिनको कभी देखा नहीं, जिनके सम्पर्क में कभी आने का अवसर ही नहीं मिला, उनके प्रति श्रद्धांजलि कैसी ? यह प्रश्न पूछा जा सकता है । किन्तु बहुत से ऐसे महान पुरुष हुए हैं, जिनको हमने कभी नहीं देखा फिर भी उनके प्रति सहज ही श्रद्धा उत्पन्न होती है । राणा प्रताप, शिवा जी, झाँसी की रानी लक्ष्मी बाई, भगत सिंह, महामना मालवीय जी आदि कितनी ही अद्भुत विभूतियाँ हुई हैं अपने देश में, जिनका स्मरण कर श्रद्धा से मस्तक झुक जाता है अपना । विदेशों में भी ऐसे महापुरुष हुए हैं जिनका यहाँ-वहाँ सब जगह आदर से स्मरण किया जाता है । वे देशकाल की सीमा में बाँधे नहीं जा सकते । समस्त विश्व उनके आदर्शों को पहचान कर उनका सम्मान करता है । और ईश्वर को भी तो किसी ने नहीं देखा, किन्तु उसके विभिन्न स्वरूपों की कल्पना करके हमारा हृदय श्रद्धावन्त हो जाता है । यही बात श्रद्धेय इंजीनियर साहब के सम्बन्ध में चरितार्थ होती है, जिन्हें उनके निकट के लोग श्री रघुनन्दन प्रसाद के नाम से जानते थे ।

मेरे लिए इंजीनियर साहब, स्व० रघुनन्दन प्रसाद जी अपरिचित रहे अब तक, किन्तु जब इस पुस्तक की पाण्डुलिपि मेरे हाथ में संयोग से आयी और मैंने उसे पढ़ा तो मेरे हृदय में उनके प्रति सहज श्रद्धा उत्पन्न हो गयी । मैं इसको अपना विशेष सौभाग्य मानता हूँ कि यह पाण्डुलिपि पुस्तकाकार छपाने के लिए मुझे सौंपी गयी और इसके मुद्रण की व्यवस्था करने का सुखद दायित्व मुझे प्राप्त हुआ, श्री ओमप्रकाश के द्वारा । यों तो श्री ओमप्रकाश जी से मेरा काफी समय से परिचय है, विज्ञापन सम्बन्धी कार्य के सिलसिले में और साहित्यिक एवं सांस्कृतिक संस्था 'कला वलय' के संस्थापक मन्त्री के नाते मेरा

सम्पर्क उनसे लम्बे अरसे से है। उनकी उदारता, सरलता और व्यवहार कुशलता का मैं बड़ा प्रशंसक हूँ। किन्तु मुझे यह ज्ञात नहीं था कि जिस उद्योग के वे वर्तमान संचालक हैं, उसकी पृष्ठभूमि क्या है? ओमप्रकाश जी में जो विशेष गुण हैं, उसका रहस्य क्या है? अचानक यह पाण्डुलिपि जो मेरे हाथ आई तो उसको पढ़ते ही सब कुछ समझ में आ गया। सारे पद उठ गये और पूरी पृष्ठभूमि दृष्टिगत होने लगी, जोकि दूर तक गहरी और अर्थपूर्ण रही। तब मुझे स्मरण आया, कुछ महीनों पहले ओमप्रकाश जी के भाई श्री धर्मप्रकाश जो राउरकेला (उड़ीसा) से आये थे और एक पुस्तक को छपाने के सम्बन्ध में मुझसे मिले थे, वह यही पाण्डुलिपि थी। यह उनका ही विशेष आग्रह रहा कि यह पुस्तक शीघ्रतिशीघ्र प्रकाशित हो जाय। उन्हीं की इच्छानुसार ओमप्रकाश जी ने यह कार्य मुझे सौंपा। इस सम्बन्ध में इन दोनों बन्धुओं का मैं आभार मानता हूँ कि श्रद्धा के इस शुभ कार्य में मुझे भी अल्प योगदान करने का सुअवसर मिला।

जब मैंने इस पाण्डुलिपि को पढ़ा तो मेरा हृदय श्रद्धा की भावना से भर गया। वास्तव में स्वर्गीय इंजीनियर साहब श्रद्धा के पात्र थे। उन्होंने अपने जीवन में जो भी कार्य किए, वे आदर्श रूप में रहे। उनका पूरा जीवन विशेष गुणों से सम्पन्न था। उनके विचार, उनकी लगन, उनकी सच्चाई, उनकी उदारता, उनकी कर्तव्य-परायणता और उनका अध्यवसाय, उनका जीवन संघर्ष, उनका कर्मयोगी सा जीवन हमारे लिए महान आदर्श के रूप में है। धन्य हैं वे जो उनके निकट सम्पर्क में रहे, जिनको उनका सामीप्य मिला। किसी भी जाति या समाज में ऐसे महापुरुष कभी-कभी होते हैं, किन्तु जब भी वे होते हैं, अपना महान कार्य करके भविष्य का पथ प्रशस्त कर जाते हैं। ऐसे महापुरुष नल और नील की भांति सेतु का निर्माण करके सबके लिए एक नया मार्ग खोल देते हैं। सिंहासिनी इंजीनियरिंग वर्क्स इसका प्रत्यक्ष उदाहरण हमारे सामने है जो स्व० रघुनन्दन प्रसाद इंजीनियर साहब की जीवन-साधना का बोलता हुआ महाकाव्य है। समाज का निर्माण ऐसे ही स्तम्भों से होता है और जिस देश या समाज में ऐसे महान व्यक्ति जन्म लेते हैं, वह देश कभी

पिछड़ा हुआ या परतन्त्र नहीं रहता वरन् वह सदैव आगे ही बढ़ता रहेगा। इसलिए ऐसे महापुरुषों को कोई सरलता से भुला नहीं सकता।

मेरे हृदय में जो सहज श्रद्धा उत्पन्न हुई, उनके प्रति, उसका विश्लेषण करना चाहा तो समझ में आया कि वह अकारण और आधारहीन नहीं है। वचन में मुझे जो वातावरण मिला और मैं जिनके सम्पर्क में रहा, उनसे मुझे इसकी शिक्षा मिली थी। मेरे संस्कार उसी साँचे में ढले। एक तो मैं गाँव का रहने वाला (भारत गाँवों में ही बसा है) जहाँ मेरे घर परिवार में बाल्यकाल में साधु सन्तों का आवागमन, स्वागत सत्कार होता था, दूसरे कानपुर आकर जब मैंने डी० ए० बी० हाई स्कूल में पढ़ना शुरू किया और आनन्दबाग में अपने फूफा जी स्व० बाबू वृजलाल निगम की छत्रच्छाया में विद्यार्थी जीवन के कुछ वर्ष बिताये तो मुझे उनके सम्पर्क से एक नई दृष्टि मिली। फूफा जी भी इंजीनियर साहब के समकालीन थे और वे भी समाज और जाति के एक आदर्श स्तम्भ थे। उनमें भी लगभग वही विशेषतायें थीं और उनका जीवन क्रम एक महान आदर्श के रूप में मेरे सामने रहा। वे बड़े कर्तव्य-परायण, स्पष्टवादी, उदार, समाज सेवक और धार्मिक एवं राष्ट्रीय विचारधारा वाले व्यक्ति थे। मेरे अनगढ़ मन और मस्तिष्क पर उनके आदर्श जीवन की छाप पड़ी। मैं हृदय से उनका आदर करता था और आज भी सदैव कृतज्ञतापूर्वक उनका सादर स्मरण करता हूँ।

इंजीनियर साहब के पड़ोसी होने के कारण फूफाजी का उनसे सम्पर्क या सामीप्य अवश्य रहा होगा, किन्तु मुझे याद नहीं कि वे उनके यहाँ जाते आते थे या नहीं। फिर भी मेरा विश्वास है कि फूफाजी का उनसे घनिष्ठ सम्बन्ध अवश्य रहा होगा।

इसके अतिरिक्त मैं जब डी० ए० बी० स्कूल का विद्यार्थी रहा, उस समय स्व० रामचन्द्र जी (मास्टर साहब) जिनका इस पुस्तक में प्रथम लेख में उल्लेख है, मेरे एक अध्यापक रहे। आर्य समाज का कार्य वे करते रहते

थे, इसकी जानकारी सब विद्यार्थियों को थी। उनकी विद्वता, सरलता और सद्ब्यवहार का स्मरण मुझे आज भी आता है। उन्हीं के साथ-साथ मैं अपने स्कूल के प्रिंसिपल स्व० विष्णु स्वरूप, अध्यापक स्व० मुंशी रामनारायण सिंह और आनन्दवाग में ही रहने वाले अपने हिन्दी अध्यापक स्व. पं० राजाराम शुक्ल 'राष्ट्रीय आत्मा' को भी श्रद्धापूर्वक स्मरण करता हूँ। इसी स्कूल में मुझको आर्य समाज और उसके संस्थापक स्वामी दयानन्द का परिचय मिला। उससे भी एक नयी दृष्टि मिली।

मैं अपने अनुभव से तथा स्व० इंजीनियर साहब के जीवन वृत्तांत को पढ़कर इस निष्कर्ष पर पहुँचा हूँ कि वचपन के संस्कार ही मनुष्य के जीवन को संवारते और बनाते हैं। यदि समाज और देश में नवजीवन भरना है तो हमारे राष्ट्र के कर्णधारों को बालकों की आरम्भिक शिक्षा और संस्कार निर्माण पर पूरा ध्यान देना होगा। तभी हमारी जाति और समाज का उत्थान हो सकता है। किन्तु दुख इसी बात का है कि स्वतन्त्रता के इतने वर्षों के उपरान्त भी हमारे देश में बालकों की शिक्षा की ओर कोई ध्यान नहीं दिया गया। शिक्षा और संस्कार निर्माण के कार्य में हमारे देश के नेतागणों ने विशेष रुचि नहीं दिखायी। वे बड़ी-बड़ी बातें करते रहे और अपने स्वार्थों की पूर्ति में ही संलग्न रहे। भविष्य इसके लिए उन्हें कदापि क्षमा नहीं करेगा।

जहाँ तक इंजीनियर साहब की विचारधारा और उनके कृतित्व का सम्बन्ध है, वे समाज के एक प्रकाश-स्तम्भ थे। अपने क्रांतिकारी विचारों की दृढ़ता के बल पर उन्होंने औद्योगिक क्षेत्र में एक महान् क्रान्ति की। वे श्रद्धा भावना से परिपूर्ण एक सहृदय व्यक्ति थे। वचपन से उन्हें आर्य समाज के संस्कार मिले थे जिससे वे एक प्रखर आर्य समाजी बने और बड़ा काम किया। कानपुर के सीसामऊ आर्य समाज की स्थापना का महत्वपूर्ण कार्य उन्होंने अपने सहयोगियों को लेकर किया था। हरिजनों, दलित वर्ग के लोगों और विधर्मी बन्धुओं को आर्य समाज के द्वारा उन्होंने नया जीवन देने का यथाशक्ति प्रयत्न किया। उनके हृदय में स्वदेश के उत्थान की, उद्योगों द्वारा समृद्ध बनाने की

और शूद्र कहे जाने वालों को ऊँचा उठाने की तीव्र भावना थी। इस दिशा में उन्होंने बहुत कुछ किया। इससे उनका महत्व समाज के मध्य स्थापित हो गया, किन्तु उन्होंने कभी श्रेय की कामना नहीं की।

यदि वे मार्क्स, लेनिन, टालस्टाय आदि का साहित्य पढ़ने का सुयोग पाते तो वे उन समस्याओं की गहराई तक पहुँच सकते थे, जो कि हमारे समाज और देश को दीन-हीन बनाने के लिए उत्तरदायी हैं। दर असल व्यक्तिगत स्वार्थों के कारण ही समाज शक्तिहीन और विखरा-विखरा है। साधनों को समेटने की प्रवृत्ति व्यक्ति में इस कारण है क्योंकि वह अपने अस्तित्व के प्रति सतत आशंकित और भयभीत रहता है। मनुष्य स्वयं तो सुरक्षा चाहता है परन्तु दूसरों को असुरक्षित देखकर कुछ करना नहीं चाहता। यदि कभी वह इस दिशा में कुछ करता भी है तो सामूहिक स्वार्थों की सुरक्षा के लिए अथवा धार्मिक आस्था और विश्वास के कारण। मनुष्यता के नाम पर भी वह कभी-कभी कुछ करता है। ऐसी दशा में कोई सही काम नहीं हो सकता। इसीलिए समाजवादी व्यवस्था को कुछ देशों ने अपनाया और समाज के प्रत्येक व्यक्ति को सुरक्षा प्रदान करने का प्रयत्न किया। आज समाजवादी देशों में जो अद्भुत प्रगति हुई है, उससे उन समस्याओं का समाधान करने में बहुत दूर तक सफलता मिली है, जिसके सम्बन्ध में इंजीनियर साहब ने अपने विचार प्रकट किये हैं। हमारे देश में जनतन्त्र की व्यवस्था और प्राचीन धर्म व्यवस्था ने इन समस्याओं को सुलझाने और देश एवं समाज को सुखी तथा सम्पन्न बनाने का अपने ढंग से उपाय किया था, किन्तु उसमें सफलता नहीं मिली। आखिरकार हमारे देश को भी समाजवाद का मार्ग अपनाना पड़ा जोकि युग की माँग है। हमारे देश की प्रधान मन्त्री श्रीमती इन्दिरा गांधी ने मध्यावधि चुनाव (१९७९) में 'समाजवाद' पर देश की जनता का आदेश माँगा। जनता ने समाजवाद के लिए भारी बहुमत से उनको विजयी बनाया। समाजवाद ही जनता की आकांक्षाओं को पूरा कर सकता है किन्तु वह समाजवाद भारत भूमि के अनुरूप होना चाहिये। हमें विदेशी समाजवाद नहीं

चाहिये । भारत के गाँवों में पंचायतों के रूप में समाजवाद की भावना का जो विकास हुआ था, उसी प्राचीन समाजवाद को नये युग के अनुरूप ढालना उचित होगा । अस्तु—

इंजीनियर साहब को लेख, कहानी, गीत आदि लिखने का भी अच्छा खासा शौक था । उनकी रचनाएँ इस पुस्तक में संग्रहीत हैं । समय-समय पर वे डायरी भी लिखते थे जिसके कुछ अंश भी इस पुस्तक में दिये गए हैं । इन सब रचनाओं से उनकी विचारधारा का परिचय भलीभाँति मिलता है । गीतकार के रूप में, उनके हृदय की उदात्त भावना, भावुकता, सरसता और सरलता की झलक सर्वत्र मिलती है ।

समाज के ऐसे कर्मवीर और धर्मवीर को मैं हार्दिक श्रद्धांजलि अर्पित करता हूँ और उनके सुयोग्य पुत्रों ओमप्रकाश जी, धर्मप्रकाश जी एवं रुद्रप्रकाश जी की सराहना करता हूँ जिन्होंने इस अश्रद्धा के युग में अपनी श्रद्धांजलि अपने देवतुल्य पिता जी को इस पुस्तक के रूप में भेंट की है । इससे बहुतों को प्रेरणा मिलती रहेगी, ऐसी आशा है ।

इस पुस्तक के मुद्रण के सम्बन्ध में यह निवेदन करना उचित समझता हूँ कि इसमें जो कुछ भी मुद्रण सम्बन्धी दोष हैं उनके लिए मुझको ही दोष दिया जा सकता है ।

२६/१७, हाता राममोहन,
कानपुर-१

—भास्कर निगम

आभार

क्रम

१ वैदिक प्रचार में		
स्व० रघुनन्दन प्रसाद का योगदान	...	रघुवर दयाल भटनागर
२ कर्त्तव्य के पुजारी	...	राजवहादुर
३ कर्मठ समाज सेवी	...	ओम्प्रकाश
४ स्नेह की मूर्ति	...	कामिनी
५ श्रम के आराधक	...	रुद्र प्रकाश
६ भूखे नंगों के सेवक	...	ललिता श्रीवास्तव
७ सच्चे प्रेरक	...	शान्ति श्रीव.स्तव
८ जीवन संघर्ष के सेनानी	...	धर्म प्रकाश
९ The Magnetic Personality	...	Shri Krishna Rai

वैदिक धर्म के प्रचार में स्वर्गीय रघुनन्दन प्रसाद का योगदान

● रघुवर दयाल भटनागर

श्रद्धेय भाई स्व० रघुनन्दन प्रसाद जी श्रीवास्तव जौनपुर निवासी से मेरा प्रथम परिचय सन् १९२२ ई० में आर्य समाज मेस्टन रोड के वार्षिकोत्सव पर हुआ। उन दिनों मैंने परमट पर किराये के एक मकान में तीन अन्य आर्य युवकों को साथ लेकर "प्रेम भवन" नामक आश्रम खोला था और हम चारों ही आर्य समाज मेस्टन रोड के सदस्य थे। मेरे इन सहयोगियों में मुंशी तुलसी प्रसाद व स्वामी प्रसाद दो युवक जौनपुर निवासी ही थे और सम्भवतः भाई जी के पूर्व परिचित थे। भाई जी ने मेरी ओर मित्रता का हाथ बढ़ाया और "प्रेम भवन" देखने की इच्छा प्रकट की। हम लोग उन दिनों नित्यप्रति परमट घाटों पर, कड़े विरोधों के बावजूद, सामूहिक यज्ञ, संध्या एवं भजन-गायन द्वारा वैदिक धर्म प्रचार करते थे जिसमें हमें डी० ए० वी० कालेज हॉस्टल के कतिपय कर्मठ आर्य युवकों का सहयोग भी प्राप्त हो जाता था। भाई रघुनन्दन प्रसाद जी "प्रेम भवन" निवासी युवकों के रहन-सहन व दैनिक प्रचार कार्यक्रम से अत्यन्त प्रभावित हुए और मुझे अपने सहयोगियों सहित आनन्द बाग के आस-पास नई आवादी में मकान लेकर रहने की प्रेरणा दी ताकि हम लोगों के सहयोग से सीसामऊ की उस नई बस्ती में भी वैदिक धर्म का प्रचार होने लगे।

परम पिता परमात्मा की अनुकम्पा से दो वर्ष पश्चात् ही गंगाजी में भयंकर बाढ़ आ जाने के कारण बाधित होकर हमें परमट छोड़ना पड़ा और भाई जी ने अपने एक जौनपुर निवासी सम्बन्धी श्री राजेश्वर प्रसाद श्रीवास्तव के

पड़ोस में ही एक मकान कर्नैलगंज में दिलवा दिया जिसमें “प्रेम भवन” के तीसरे सहयोगी मुंशी काली प्रसाद श्रीवास्तव जिन्होंने अपना नाम आर्यमित्र रख लिया था, मेरे साथ ही रहने लगे और इस प्रकार जहाँ एक ओर हम लोगों को अपने निकट रखने की भाई जी की इच्छा पूर्ण हुई, वहाँ दूसरी ओर, म० सूर्यबलो ठेकेदार एवं भाई जी के सहयोग से कर्नैलगंज में साप्ताहिक सत्सङ्गों द्वारा प्रचार की व्यवस्था भी हो गयी और दो वर्ष पर्यन्त धूम-धाम से वहाँ कार्य चलता रहा; जिसमें हमें प्रो० गोविन्द राम जी सेठ एवं मेरे ही नामांसाएँ एक अन्य कांग्रेसी एवं कर्मठ आर्यसमाजी म० रघुवर दयाल स्वर्णकार का सहयोग भी मिलने लगा। मेरे साथी म० आर्यमित्र जो हारमोनियम पर भजन भी गा सकते थे और बड़े लगनशील युवक थे, इस सत्संग द्वारा प्रचार में बड़े सहयोगी सिद्ध हुये।

दैवयोग से इसी बीच मुझे नई आवादी प्रेम नगर में एक प्लॉट मिल गया जिस पर १९२६ में मैंने एक रहने योग्य मकान बनवा लिया और उसी मकान को केन्द्र बनाकर नई बस्ती में भी प्रचार करना आरम्भ कर दिया जिसमें भाई रघुनन्दन प्रसाद तथा श्रीनगर निवासी मास्टर रामचन्द्र का पूर्ण सहयोग रहता था।

उन्हीं दिनों पुराने सीसामऊ निवासी म० अम्बिका प्रसाद भी पेंशन लेकर कानपुर आ गये और हमें एक अनुभवी वयोवृद्ध सहयोगी के रूप में बड़े उपयोगी सिद्ध हुए। अब हमारा वैदिक धर्म प्रचार क्षेत्र केवल कर्नैलगंज और प्रेम नगर तक ही सीमित न रहकर आनन्द बाग, गाँधी नगर, कुरियाना, राम बाग, पुराने सीसामऊ इत्यादि तक विस्तृत हो गया। इस प्रचार कार्य में मास्टर रामचन्द्र श्रीवास्तव ने पुरोहित कार्य सम्पन्न कर बहुत बड़ा सहयोग दिया।

प्रभु की लीला अपरम्पार है जो शुभ कार्यों के लिए वह विचित्र ढंग से साधन जुटाता है। एक दिन की बात है कि कर्नैलगंज के एक मेरे परिचित सज्जन, जिनके हाथ में दैनिक पत्र “वर्तमान” था, रास्ते में मिल गये और अखबार दिखलाकर आश्चर्य से कहने लगे कि “अरे ! आप को तो सजा हो

गयी है, आप यहाँ कैसे ?” यह सुनकर मैं चकित रह गया और उन्हें सच्ची परिस्थिति से अवगत कराया कि सजा मुझे नहीं, मेरे नामारासी म० रघुवर दयाल स्वर्णकार को हुई है ।

उपर्युक्त आकस्मिक घटना से मुझे काफी ठेस पहुँची और उसी समय अपने मन में दृढ़ संकल्प किया कि अब नई बस्ती में ही विधिवत आर्य समाज की स्थापना होनी चाहिए क्योंकि इधर कुछ दिनों से मेरे कर्नेल गंज छोड़ कर प्रेम नगर चले जाने एवं कर्नेल गंज सत्संग के एक कर्मठ कार्यकर्ता को सजा हो जाने के कारण वहाँ का प्रचार कार्य भी कुछ शिथिल पड़ गया था । संभवतः उक्त घटना एवं अपने संकल्प के विषय में तुरन्त भाई रघुनन्दन प्रसाद को सूचित कर परामर्श किया और वे मेरे विचार से सहमत हो सहज स्वभाव से बोले कि “यह तो बहुत दिनों से मेरी उत्कृष्ट इच्छा है और इसी उद्देश्य की पूर्ति के निमित्त आप लोगों को परमट छोड़ने तथा नई आबादी में रहने के लिए प्रेरित किया था । अतः ‘दो दिल एक शब्द विश्कुनद कोहरा’ (दो दिल एक होकर पहाड़ भी तोड़ सकते हैं) के अनुसार अब नयी आबादी में आर्य समाज की स्थापना अवश्य होगी और मैं स्वयं तन, मन, धन से पूर्ण सहयोग इस शुभ कार्य में दूंगा ।” किन्तु नाम के विषय में हम दोनों में कुछ मतभेद हो गया क्योंकि मैं “आर्य समाज प्रेम नगर” नाम रखना चाहता था और वे “आर्य समाज आनन्द बाग” नाम रखना चाहते थे । परन्तु यह मतभेद भी तत्काल दूर हो गया और हम दोनों ने निश्चय किया कि सब पुराने एवं नये सहयोगियों की एक सभा बुलाई जाय और उसका सर्वसम्मति निर्णय ही मान्य हो ।

अस्तु पुराने सीसामऊ में म० अम्बिका प्रसाद के मकान पर सहयोगियों की मीटिंग बुलायी गयी । सर्व सम्मति से निश्चय हुआ कि नई बस्ती में विधिवत आर्य समाज की स्थापना अवश्य हो परन्तु नये मुहल्लों में किसी एक का नाम न रखकर केवल “आर्य समाज सीसामऊ” ही रखा जाय और शीघ्रातिशीघ्र किसी भावी पार्क या खुले मैदान के पास एक प्लाट लेकर मन्दिर निर्माण कराया जाय । प्लाट का मूल्य चुकाने के सम्बन्ध में निश्चय हुआ कि प्रत्येक उपस्थित सहयोगी अपनी-अपनी एक मास की आय तुरन्त इस कार्य के निमित्त दे ।

तत्पश्चात् ही जनता से धन की अगील की जाय । इस पर सर्व प्रथम श्रद्धेय भाई रघुनन्दन प्रसाद ने उदारता पूर्वक अपना उस समय का एक मास का वेतन १५० रु० देने की घोषणा कर दी और मैंने भी अपना एक मास का वेतन १२० रु० देने का वचन दिया । हम दोनों से प्रेरित होकर अन्य निम्नांकित उपस्थित सहयोगियों ने ऐसा ही किया । म० सूर्यबली ठेकेदार १०१ रु०, मास्टर रामचन्द्र ८० रु०, म० काली प्रसाद उर्फ आर्यमित्र ८० रु०, म० रामदयाल वर्मा १०० रु०, म० तुलसी प्रसाद ६५ रु०, म० जगन्नाथ प्रसाद ५१ रु०, म० चन्द्रबली ५१ रु०, म० मगन स्वरूप ४२ रु०, म० अम्बिका प्रसाद ३७।। रु० एक मास की पेन्शन । प्लाट खोजने का कार्य मेरे सुपुत्र हुआ क्योंकि मैं उस समय इम्प्रूवमेण्ट ट्रस्ट में ही कार्य करता था । ईश्वर की कृपा से कुछ ही दिनों में मौजूदा ऋषि दयानन्द उद्यान अथवा लेनिन पार्क के बगल में एक खाली प्लाट जिसमें उस समय भराव किया जा रहा था, मिल गया ।

इस भाँति ईश प्रेरणा से उस शुभ घड़ी में 'आर्य समाज सीमामऊ' की विधिवत स्थापना करके नियमानुसार अधिकारियों का निर्वाचन किया गया एव निश्चय किया गया कि जब तक प्लाट की भूमि, भवन निर्माण के योग्य न हो जाय, प्रचार केन्द्र मेरे मकान से हटाकर, एक कमरा किसी केन्द्रीय स्थान पर लेकर, वहीं से प्रचार कार्य का संचालन हो । उक्त निश्चयानुसार बड़े चौराहे पर, जो कि पुरानी एवं नई वस्तियों के बीच में है, मन्ू तेली की एक दुकान लेकर, 'आर्य समाज सीमामऊ' का बोर्ड लगा दिया गया और वहीं पर साप्ताहिक सत्सङ्ग होने लगे ।

लगभग दो वर्ष पश्चात्, भूमि के भवन निर्माण-योग्य हो जाने पर आर्य प्रतिनिधि सभा उत्तर प्रदेश लखनऊ के नाम रजिस्ट्री कराने के उपरान्त, एक शुभ दिन, श्रद्धेय भाई रघुनन्दन प्रसाद के करकमलों से प्लाट के पूर्व उत्तर के कोने की १९ फुट गहरी बुनियाद के नीचे एक ताम्र कलश रखवा कर, वेद मंत्रों की ध्वनि के बीच, सैकड़ों व्यक्तियों की उपस्थिति में, हर्ष ध्वनि के साथ मन्दिर के निर्माण का शुभारम्भ सम्पन्न हुआ; जिसका पूर्ण व्यय श्रद्धेय भाई जी ने ही स्वयं सहर्ष उठाया और तत्पश्चात् ही उन्होंने अपने खर्च से प्लाट के पश्चिमोत्तर

भाग में सड़क के किनारे एक कमरे का निर्माण भी कराया किन्तु अरने नाम का पत्थर लगवाने के सम्बन्ध में जीवन पर्यन्त विरोध ही करते रहे ।

इस प्रकार मन्दिर निर्माण कार्य आरम्भ हो जाने पर म० अम्बिका प्रसाद ने यज्ञ-शाला, प्रोफेसर डिप्टी लाल निगम ने अपनी पुत्री की स्मृति में आगे वाला दूसरा कमरा, मास्टर कन्हैया लाल ने फाटक, श्री फतेहसिंह भार्गव ने पूर्व की ओर का बरामदा, श्री दौलतराम कोहली ने पश्चिम की ओर का बरामदा, अपने-अपने खर्चों से बनवाये । चहारदीवारी इत्यादि के निर्माण में भाई विश्वम्भर नाथ तिवारी का सहयोग (भट्टे वालों से ईंटों के रूप में दान प्राप्त कराने में) सराहनीय रहा ।

निस्सन्देह श्रद्धय वन्धुवर की उत्कट वैदिक धर्म प्रचार की लगन, सहयोगी एकत्रित करने में दूरदर्शिता, व हार्दिक सद्प्रयत्न, अदम्य उत्साह, अतुलित धैर्य एवं सहज स्वभाव सिद्ध निश्छल त्याग, कार्य कुशलता, तन-मन-धन से पूर्ण सहयोग इत्यादि गुणों के कारण ही 'आर्य समाज सीमामऊ' की विधिवत स्थापना हो सकी और भवन निर्माण कार्य आरम्भ हो सका । अन्यथा मैं अकेला तो साधनों के अभाव में अपने संकल्प का पूर्णरूपेण पालन भी न कर सकता और सम्भवतः मेरा पुरुषार्थ केवल घूमते फिरते वैदिक धर्म प्रचार तक ही सीमित रह जाता । यह ईश्वरेच्छा ही थी कि 'कुन्द हम जिन्स बा हम जिन्स परवाज' के अनुसार हम दोनों का परिचय एवं घनिष्ट मित्रता कराके एक आवश्यक कार्य को सिद्ध कराया । अतः मेरी सम्मति में इस सारे कार्य के लिए श्रद्धेय भाई जी ही प्रथम श्रेय पाने के अधिकारी हैं । हम दोनों ही प्रारम्भ से विशाल-मन्दिर निर्माण के मुकाबले मानव निर्माण को अधिक श्रेयस्कर समझते रहे और इसी कारण केवल एक मंजिल तक, हाल की छत के अतिरिक्त आवश्यकतानुसार ही निर्माण करा के अधिक बल, नई व पुरानी बस्तियों के अहातों व पाकों इत्यादि में धर्म प्रचार पर ही, देते रहे । शेष दूसरी मंजिल का निर्माण कार्य १९४७ के पश्चात् श्रद्धेय डा० शिवदत्त, म० कृष्ण कपूर, श्री प्रेम कुमार कोहली इत्यादि के पुरुषार्थ से सम्पन्न हुआ ।

स्वर्गीय भाई जी से मेरा सम्बन्ध केवल आर्य समाज के नाते ही नहीं

था, किन्तु निजी दैनिक जीवन में भी हम दोनों सदैव एक दूसरे के निकट सहयोगी बने रहे। उनके सहृदय मित्र-भाव की एक घटना मुझे अब तक याद है कि मेरी पहली पुत्री जब एक बार, बचपन में, बहुत अस्वस्थ हो गयी और मैं अधीर हो रहा था तो वे तत्काल आनन्द बाग निवासी डा० राम नारायण लाल को लेकर मेरी सहायतार्थ आये और मुझे सान्त्वना दी।

ईश्वर पर विश्वास एवं दैदिक धर्म में अटूट श्रद्धा उत्पन्न होने के संबंध में, एक दिन, उन्होंने बताया कि जब वे जौनपुर में पढ़ते थे तो कुछ अच्छे नम्बरों से पास नहीं हो पाते थे। किन्तु एक आर्य समाजी सन्यासी के सम्पर्क में आने के कारण दैनिक संध्या और यज्ञ करना सीखा था। जब लखनऊ टैक्निकल इंस्टीट्यूट में आये तो उसे नित्यप्रति नियम पूर्वक करने लगे, जिससे उनकी बुद्धि का विकास तीव्र गति से होने लगा और फिर बड़े अच्छे नम्बरों से पास होने लगे।

उनके सागर समान धैर्य की जानकारी मुझे उस समय हुई जब चि० ओउम् प्रकाश के विवाह में, गोंडा में, समधी महाशय ने बड़ी लम्बी दावत का प्रबन्ध किया हुआ था और हम लोग खाना आरम्भ करना ही चाहते थे कि यकायक बड़े जोरों की आँधी चलने लगी और सामने परोसे हुए सारे भोज्य पदार्थ पत्तलों समेत उड़ गये अथवा नष्ट हो गये और सब लोगों को भूखे ही उठ जाना पड़ा। रात्रि भी अधिक ढल चुकी थी। ऐसी परिस्थिति में समधी साहब का अधीर और व्याकुल होना स्वाभाविक ही था। परन्तु उसी समय भाई जी ने निश्चल भाव से ईश्वरेच्छा कह कर उन्हें सान्त्वना दी और तुरन्त केवल पूरियाँ और एक शाक मात्र बनवाने का परामर्श दिया और इस प्रकार आकस्मिक दैवी संकट का सहर्ष धैर्य पूर्वक सामना कर ईश्वर को धन्यवाद दिया।

श्रद्धेय भाई जी के दो वाक्य, जिन्हें वह अक्सर दोहराया करते थे—
“Work is worship” और “Rome was not built in a day”—सदैव मेरे पथ प्रदर्शक बने रहेंगे और बराबर मेरे कानों में गूँजते रहेंगे। इसका प्रत्यक्ष प्रमाण मैंने उनके प्रारम्भिक धन सम्बन्धी कष्टों के

निकट बावजूद सिंहासिनी कं० के सफलता पूर्वक निर्माण में, सतत् लगे रहने में पाया । मुझे याद है कि एक दिन परिस्थिति से बाध्य हो, उन्होंने मुझ से ५०० रु० और मैं कम्पनी की सहायतार्थ माँगे परन्तु मैंने केवल २५० रु० ही उन्हें दिये जो उन्होंने सधन्यवाद लेकर, किसी प्रकार काम चलाकर, कार्य पूरा होने के पश्चात् मुझे लौटा दिये । परन्तु मैं आज तक पछताता हूँ कि मैंने पूरे ५०० रु० ही उन्हें क्यों नहीं दे दिए क्योंकि जिस बैंक से निकालकर मैंने उन्हें २५० रु० दिये थे, वह कुछ ही दिनों में फेल हो गया और मेरे शेष १७५० रु० मारे गए । केवल उन्हीं के लौटाये हुए रुपये मेरे हाथ लगे ।

यों तो उनके एक एक गुण को लेकर मैं बहुत कुछ लिख सकता हूँ परन्तु विस्तार भय से अधिक न लिखकर केवल इतना ही कह कर सन्तोष करता हूँ कि मैंने अपने ७१ वर्ष के जीवन में, केवल भाई रघुनन्दन प्रसाद को ही धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष रूपी चारों श्रेष्ठ पदार्थों को सफलता पूर्वक प्राप्त करते देखा है और अपने एक हितैषी बन्धु, मित्र एवं निकटतम् सहयोगी को खोने के पश्चात् उस मुमुक्षु आत्मा के लिए केवल हादिक श्रद्धांजलि अर्पित करने के लिए जीवित रहकर सन्तोष कर रहा हूँ ।

(१९१३/१४ बी, स्वरूप नगर, कानपुर)

कर्त्तव्य के पुजारी

● राज बहादुर

मेरे पूज्य बड़े भाई, जिन्हें मैं प्यार से 'भइया' कहा करता था, उनका जन्म गाँव रानीपुर (जिला जौनपुर-उ० प्र०) में हुआ था। उनका प्रारम्भिक जीवन गाँव में ही व्यतीत हुआ। वैसे तो माँ के साथ प्रत्येक बच्चे का लगाव स्वाभाविक ही है, किन्तु भइया का माँ के प्रति विशेष लगाव था और वे माँ के पूरे भक्त थे। माँ के साथ प्रतिदिन वे श्रीराम, लक्ष्मण, जानकीजी एवं हनुमान जी की पूजा करते थे; जिसमें वे छोटी सी घंटी बजाते थे तथा आरती किया करते थे। हनुमान चालीसा उन्होंने याद कर लिया था और प्रतिदिन हनुमान चालीसा का पाठ किया करते थे। कभी कभी माँ के साथ वे मन्दिर भी जाते थे, जहाँ पूजा आदि करते थे। प्रायः वे गाँव के और बच्चों को बुला लाते और उन्हें पूजा करना सिखलाते थे।

बचपन में उनका प्रिय भजन था—

खाली जिभिया कौने काम ।

जब बोले तब राम ही राम ॥

जिभिया कहे हम खट मिठ खावें ।

कनवा कहे हम सुनब वेद पुरान ॥

गोड़वा कहे हम तीरथ करबैं ।

हथवा कहे हम देव दान ॥

बड़े होने पर वे गाँव में कहीं भी बड़ई या लोहार को काम करते देखते, वहीं बैठ जाते और बड़े ध्यान से उनको काम करते हुए देखा करते। बाद में उनसे औजार माँग कर स्वयं भी छोटी छोटी चीजें, जैसे छोटे छोटे डिब्बे, खूँटी दिवालगिरी आदि चीजें वे स्वयं तैयार कर लेते थे। उम्र के साथ साथ यही शौक व्यापक रूप में बढ़ता चला गया।

उनकी प्रारम्भिक शिक्षा भी गाँव में ही हुई। फिर आगे पढ़ने के लिए जौनपुर आये। वहाँ उनका पढ़ाई में विशेष मन न लगता था। ड्राइंग उनका प्रिय विषय था। उसमें उन्हें नम्वर भी अच्छे मिलते थे। वे अक्षर भी बहुत सुन्दर लिखते थे। परन्तु अन्य विषयों में उनका विशेष मन नहीं लगता था, किन्तु कसरत इत्यादि खूब करते और शरीर को पुष्ट बनाने पर अधिक ध्यान देते थे।

यहाँ पाँच वर्ष की शिक्षा में उन्होंने इतना सीख लिया था कि हमारे चाचा जी ने, जो उस समय मुख्तारी करते और एक स्टेट के मनेजर भी थे, उनका नाम लखनऊ के टेक्नीकल इंस्टीट्यूट में लिखा दिया। वहाँ भइया ने बड़े मनोयोग से अपनी शिक्षा पूरी की। प्रथम वर्ष की अर्द्ध वार्षिक परीक्षा में वे प्रथम आये, उन्हें छात्रवृत्ति मिली। साथ साथ खेल कूद प्रतियोगिता में भी प्रथम आये। वह समय क्रान्ति का था। जन जन के हृदय में क्रान्ति की चिनगारियां सुलग रही थीं। भइया से कुछ क्रान्तिकारी मित्रों ने, उन्हें भी क्रान्ति में शामिल होने के लिए प्रोत्साहित किया। भइया ने अपने मित्रों से दो दिन का समय माँगा। इन दो दिनों में उन्होंने खूब अच्छी तरह विचार किया। फिर अपने साथियों से बोले, "भारत माँ की सेवा करने का मेरा भी उद्देश्य है। लेकिन उसका मार्ग भिन्न है। मैं टेक्नीकल आदमी हूँ। अतः मैं देश की औद्योगिक उन्नति (क्रान्ति) में भाग लूँगा।" भइया ने बड़ी मेहनत एवं लगनशीलता से अपने व्रत का पालन किया। यहाँ उनके प्रधान अध्यापक अंग्रेज थे, जो उनसे बहुत प्रसन्न रहते थे। उन्हें बहुत मानते भी थे।

लखनऊ में, टेक्नीकल शिक्षा प्राप्त करने के साथ साथ भइया आर्य समाज के सदस्य भी बन गये थे। वे प्रत्येक रविवार को आर्य समाज मन्दिर जाते थे। अपने धर्म-प्रचार में उनकी बहुत रुचि थी। वे नियम पूर्वक हर दिन सन्ध्या व हवन आदि होस्टल के अपने कमरे में किया करते थे। उनके साथी लोग, इसी कारण उनको 'स्वामी जी' कहने लगे थे।

लखनऊ में टेक्नीकल शिक्षा के पाँच वर्ष बाद प्रैक्टिकल ट्रेनिंग के लिए

कानपुर, एक बड़ी कम्पनी में भेज दिये गये, जहाँ दो वर्ष की ट्रेनिंग समाप्त करने के बाद वे छः महीने तक ड्राइंग आफिस में काम करते रहे और एक वर्ष में ही सेंकड क्लास इन्जीनियरिंग कोर्स 2nd class Engineering Course पास कर उस कम्पनी को छोड़ कर मिर्जापुर काटन मिल्स में चले गये। वहाँ छः मास तक कार्य करने के पश्चात् पुनः कानपुर आ गये। उस समय यहाँ एक अंग्रेज डी० वाल्डी कं० (D. Waldie Co.) के नाम से फैक्टरी चला रहा था। भइया उस फैक्टरी में काम करने लगे। उनके आने से पहले वहाँ एक अंग्रेज इन्जीनियर इन्चार्ज था किन्तु उसका तवादला कुछ दिनों के लिए दूसरी ब्रान्च में हो गया था। यहाँ भइया के काम से लोग इतने प्रभावित हुए कि अंग्रेज इन्जीनियर के स्थान पर इन्हें ही सारा भार सौंप दिया गया। दो वर्ष बाद एम्पायर इन्जीनियरिंग कं० के मालिक सर ट्रैसी गोविन जोन्स ने, जिनका भइया से बहुत लगाव था, इस कम्पनी को खरीद लिया। भइया को फिर वही पुराने मालिक मिल गये। दोनों ही बहुत खुश हुए उन्होंने तीस वर्ष तक इस कारखाने में काम किया। अपनी इस नौकरी के समय भइया ने बड़े २ प्लांटों को चालू करवाया, उनका सुधार एवं डिजाइन करवाया। कुछ खास प्रकार के रासायनिक पदार्थ बनाने की विधि और प्लांटों के विकास में सहयोगी रहे। इन रासायनिक पदार्थों के बनाने की जानकारी Know How हमारे देश को विदेशों से खरीदनी नहीं पड़ी। यहीं से वह जानकारी देश के अन्य भागों में फैली। ये रसायन दूसरे महायुद्ध में बहुत काम आये तथा देश की स्वतन्त्रता के बाद देश की औद्योगिक उन्नति में सहायक बने।

एक बार की घटना है, दूसरे महायुद्ध के दौरान एक खास रसायन बनाने के लिये एक रासायनिक मशीन का आयात किया जाने वाला था। भइया ने बड़े दृढ़ निश्चय से कारखाने के मालिक से कहा कि मशीन मंगाने की आवश्यकता नहीं है। मैं अपनी देखरेख में वह मशीन यहीं पर बनवा लूंगा। लेकिन अंग्रेज आफिसर ने विदेश को आर्डर दे दिया। संयोगवश, जिस जहाज में वह मशीन आ रही थी, वह डूब गया। तब भइया की देख रेख में वह मशीन यहीं भारत में बनवायी गयी।

उनकी तीव्र इच्छा थी कि वे अपना निजी उद्योग स्थापित करें। उन्होंने मुझे प्रेरित किया कि मैं उनका सहयोगी बनूँ और थोड़ी सी पूंजी से 'सिहा-सिनी इंजीनियरिंग वर्क्स' की नींव डाली गयी। समय समय पर वह आर्थिक सहायता देते रहते थे और कार्य सम्बन्धी पथ प्रदर्शन करते रहते थे।

उद्योग की रूपरेखा देख कर उनके अग्रेज आफीसर ने इच्छा व्यक्त की कि वे आर्थिक सहायता देंगे और भइया उन्हें भी इसका भागीदार बना लें। किन्तु भइया को यह बात पसन्द न आयी और उन्होंने बड़ी खूबी से उनके प्रस्ताव को टाल दिया। थोड़ी सी पूंजी से आरम्भ किये गए उद्योग की प्रगति धीमी ही थी। लेकिन भइया के हर कार्य में पूरी ईमानदारी का ध्यान सदैव रहता था। वे चाहते थे, उद्योग बन जाय तो वे भी नौकरी छोड़कर उसमें आ जायें। लेकिन अंत में उन्होंने निर्णय किया कि समय से पूर्व अवकाश लेकर अपने उद्योग को मजदूत बनायेंगे। पूंजी की कमी के कारण उन्हें कितनी ही असफलताओं का सामना करना पड़ा। लेकिन वे हिम्मत नहीं हारे। उन्होंने डेवलेपमेण्ट विंग वालों को अपने विशेष प्रकार की रासायनिक मशीन बनाने की क्षमता के बारे में लिखा। सौभाग्यवश, उसी समय एक व्यापारी ने भी उसी प्रकार की मशीन आयात करने के लिए वहाँ प्रार्थना पत्र दिया था। डेवलेपमेण्ट विंग वालों ने उन महाशय को सूचित किया कि वे उस मशीन के विषय में भइया से बात करें। इसी बीच १९५६ में वे गम्भीर रूप से बीमार पड़ गये। उन्हें अस्पताल में भर्ती करा दिया गया। वहाँ उनका इलाज चल ही रहा था कि उन्हें मशीन बनाने के आर्डर की खबर मिली। इस समाचार ने उन पर चमत्कारिक प्रभाव डाला। उन्हें लगता कि कितनी जल्दी मैं ठीक हो जाऊँ और मशीन बनवाऊँ। वे अपनी इसी इच्छा शक्ति के कारण शीघ्र ही स्वस्थ भी हो गये। स्वास्थ्य लाभ के बाद उन्होंने मशीन बनवाई, जिसमें उन्हें सफलता मिली। उस समय सामाजिक क्रान्ति प्रारम्भ हो रही थी। सरकार ने आर्थिक क्रान्ति लाने के लिए, उद्योग विकास हेतु ऋण देना शुरू किया था। भइया ने सरकार से अपने उद्योग के विकास के लिए ऋण लिया और अपनी पूरी शक्ति से उद्योग को बढ़ाने के लिए प्रयत्नशील हुए। उस घरेलू उद्योग को दृढ़ करने के लिये

अंत समय तक संघर्ष करते रहे। आज उनके अथक परिश्रम से लगाया हुआ पौधा बड़ा वृक्ष बन गया है जिससे पर्याप्त फल प्राप्त हो रहे हैं।

भइया बहुत उच्च विचार के व्यक्ति थे। वे अपने सहायकों और मजदूरों के प्रति कभी द्वेष भाव नहीं आने देते थे। एक बार की घटना है कि एक बूढ़ा आदमी, जो कि व्वायलर पर काम करता था, उसके सो जाने से व्वायलर फटने की सम्भावना हो गयी थी। रात को भइया वहाँ पहुँचे और बड़ी कठिनाई से संकट पर काबू पाया। आफीसर लोग उसे निकालना चाहते थे परन्तु उन्होंने सुझाव दिया कि किसी की रोटी मत छीनो। उसको दण्ड स्वरूप अपने पद से एक पद नीचे काम करने दो। लेकिन उस व्वायलर कर्मचारी को शायद सच्ची बात का पता नहीं था। उसने द्वेषवश एक रात, सोते समय भइया की गर्दन अपनी तलवार से काटने का प्रयत्न किया। उन्हें रात में ही आपरेशन के लिए ले जाना पड़ा। जब डा० ने बिना बेहोश किये टाँके लगवाने को कहा तो बिना हिचक वे तैयार हो गये। स्वस्थ होने पर पुलिस ने बहुत पूछा लेकिन केवल शंका पर किसी व्यक्ति के विरुद्ध बयान देने से साफ इन्कार कर दिया। क्योंकि वे सुधारवादी और क्षमशील व्यक्ति थे। किसी के जीवन को नष्ट करना उनका उद्देश्य नहीं था।

भइया ने कानपुर पी० रोड सीसामऊ में, पार्क के सामने आर्य समाज की स्थापना की। अपने पास से रुपया लगाया और चन्दा संग्रह कर कानपुर डेवलपमेन्ट बोर्ड से जमीन खरीदी ओर एक सादा सा मन्दिर बनवाया। आज वही आर्य समाज कानपुर में सबसे बड़ा आर्य समाज है। प्रत्येक रविवार को आर्य समाज के हवन इत्यादि के बाद, अपने कुछ निकट सहयोगियों के साथ वे अछूतों के मुहल्लों में जाते थे; जहाँ हवन तथा संस्कार आदि के कार्यक्रम करवाया करते थे। उनमें से गरीबों को दवा दिलवाते तथा उनके बच्चों को शिक्षा के लिए प्रेरित करते थे। बहुतों को शिक्षा के लिये आर्थिक सहायता भी दिया करते और किसी न किसी उद्योग में भी लगवा दिया करते थे।

उन्होंने आर्य समाज द्वारा चलाये गये शुद्धि आन्दोलनों में भी भाग लिया। अनेक परिवार जो अपने धर्म में वापस आना चाहते थे, उन्हें शुद्ध किया

एक बार उन्हें एक शुद्ध किये हुये परिवार के कारण बड़ी कठिन परीक्षा देनी पड़ी थी। वह एक ईसाई परिवार था जिसने अपने हिन्दू धर्म में लगाव के कारण अपने सम्बन्धियों तथा धर्मगुरु पादरी की इच्छा के विरुद्ध हिन्दू धर्म ग्रहण कर लिया था। ये थे जयदेव वर्मा तथा उनकी पत्नी सरस्वती देवी। धर्म परिवर्तन के पश्चात् वर्मा के पास उसके समुद्र का एक पत्र आया था जिसे अविकल रूप में यहां दिया जा रहा है :—

X

X

X

बेतिया

प्रियवर,

चिरंजीव !

आपका पत्र मिला। धन्यवाद ! पूरे वृत्तान्त से अवगत हुआ। जब तक आप नीचों में थे तब तक सब कुछ था, याने कि घर द्वार, धन दौलत। आर्य्य होने से सब कुछ नष्ट हो गया। पेट के लिए धर्म परिवर्तन नहीं होता है। सिद्धांत पर प्राण दे देना ही श्रेष्ठ पुरुषों का काम है। आपके आर्य्य हो जाने से फादर वगैरह कुल कुटुम्ब सब नाराज हैं। मैं एक पैसे की भी सहायता नहीं कर सकता। मैं तीन महीने से बीमार हूं। अगर तुम हम लोगों में रहना नहीं चाहते तो आर्य्य ही रहो, लेकिन देखना कहीं डूब न जाना। क्योंकि आर्य्य समाजी खानपान तो कर लेते हैं, मगर शादी विवाह का प्रबन्ध सम्भव नहीं। विशेष लिखना व्यर्थ है। तुम्हारे जी में जो आया, किया और जो समझ में आवे करो। हम लोगों से आशा रखना व्यर्थ है।

तुम्हारा समुद्र

दाउद बतलोमी

X

X

X

वह (जयदेव वर्मा) अपने ईसाई सम्बन्धियों के बहकावे में आकर अनेक प्रकार के मिथ्या आर्थिक संकट बताकर सहायता मांगता रहता था। भइया सब कुछ जानते हुए भी उसको आर्थिक सहायता देने में कभी पीछे नहीं हटे। यद्यपि इसके लिए उन्हें परिवार वालों का विरोध भी सहना पड़ता था। लेकिन वे अन्त तक अपने कर्तव्य पर अडिग रहे। उसे सम्मान पूर्वक जीवन व्यतीत करने के लिए आर्थिक सहायता इत्यादि देकर अनेक प्रकार के व्यवसाय में भी लगाया। लेकिन उसे अपने पैरों पर कब खड़ा होना था ? वह तो परीक्षा ले रहा था। अन्त में भइया ने अपने एक मित्र के यहाँ उसको नौकरी दिलवा दी। वहाँ भी उसने चोरी की और पकड़ा गया। उसे सजा हो गयी। लेकिन यह भइया की सद्भावनाओं का ही प्रभाव था कि जेल से आने पर उसने भइया से माफी माँगी और फिर अपने पैरों पर खड़ा हुआ तथा एक भले नागरिक की भाँति अपना जीवन व्यतीत करने लगा। नीचे दिये गये सरस्वती देवी के पत्र से इस बात की पुष्टि होती है :—

×

×

×

ओ३म्

श्री,

पूज्य भइया जी,

कमल रूपी चरणों में,

सादर नमस्ते !

आपका पत्र मिला समाचार मालूम हुआ। आपका पत्र पाकर बड़ी प्रसन्नता हुई। आपकी प्रार्थना तथा ईश्वर की कृपा से दोनों बच्चे मुन्नी तथा छोटी कुशलपूर्वक हैं। आशा है कि आप भी सपरिवार कुशल क्षेम से होंगे। आपसे अलग हुए पाँच साल पूरे होने को आये। न मालूम किस किस परिस्थिति में हम लोगों ने अपने समय को व्यतीत किया। आपको पत्र नहीं लिखती थी लेकिन अपनी सन्ध्या में प्रतिदिन

सहाय
प्रायः
कि ज

आपको याद करती थी और करती हूँ। मुझे मालूम हुआ कि मेरे पत्र न लिखने से आप नाराज हैं। सो करबद्ध प्रार्थना है कि कृपा करके मुझको क्षमा करेंगे। और समाचार यह है कि पतिदेव की सर्विस इसी महीने तक है। बाद इसके छुट्टी मिल जावेगी। सो प्रार्थना है कि कृपा करके कोई नौकरी इनके लिए ठीक कर दीजिये। मैं बहुत आपको देखना चाहती हूँ। क्योंकि मैं इतने दिनों कई जगह में रही लेकिन आपके ऐसा योगी हमको नहीं मिला। सो महुँगी का जमाना है। बहुत कष्ट में हम लोग हैं। पतिदेव भी साधू हो गये हैं। अब इनका स्वभाव बहुत अच्छा हो गया है तथा आपको हमेशा याद करते रहते हैं। मुन्नी मामू मामू कह याद किया करती है और आपको देखने के लिए व्याकुल रहती है। आशा करती हूँ कि अपने शरणागत में एक और मौका देंगे मुझ गरीब दीन को, क्योंकि संसार में आप ही मेरे भाई हैं, और कौन है जिसको अपना दुख सुख लिखूँ? सो कृपा करके अति शीघ्र पत्र का उत्तर देंगे। पतिदेव आपको नमस्ते कह रहे हैं तथा मेरा नमस्ते भाभी जी को तथा बच्चों को शुभ आशीर्वाद।

आपकी दुखहारी अभागिनी
 ४२४
 और असहाय बहन
 सरस्वती देवी

×

×

×

भइया बचपन से ही बहुत दयालु प्रकृति के थे। दीन दुखियों की सहायता में सदैव आगे रहते थे। किसी को ठंड में सिकुड़ता हुआ देख कर वे प्रायः अपने शरीर के कपड़े उतार कर दे देते थे। १९१९ की एक घटना है कि जब एक बार भइया गरमी की छुट्टियों में लखनऊ से अपने गाँव रानीपुर

आये थे, हम सब बच्चों के साथ बाग में खेल रहे थे। वहाँ पर घर का नौकर जो कि छोटी उम्र का था तथा जाति का अहीर था। वह जामुन के पेड़ पर चढ़कर जामुन खा रहा था कि अचानक पेड़ से गिर गया। वह बेहोश हो गया तथा उसकी साँस रुक गई। किसी की उसे छूने की हिम्मत नहीं पड़ रही थी। भइया ने तुरन्त उसकी नाक दबायी तो उसने मुँह से साँस ली। फिर उसके मुँह पर पानी के छींटे देते रहे जिससे उसे होश आया। उसे घर लाद कर ले आये। दूध में फिटकरी मिलाकर पिलाया और करीब माह भर खुद उसके बदन पर सुअर की चर्बी की मालिश करते रहे। उनकी सेवा का फल था कि वह धीरे-धीरे चलने लगा और बिल्कुल ठीक हो गया। हमारे पिता जी भइया की मुस्तैदी एवं सेवा करते देखकर बहुत खुश होते थे। क्योंकि वे भी इसी स्वभाव के थे। गरीबों को अनाज, कपड़ा, दगैरह बराबर देते रहते थे। पिताजी एक बार जौनपुर में गोमती नदी के किनारे शाम को घूम रहे थे। जाड़े के दिन थे। उन्होंने दुलाई ओढ़ रखी थी। वहाँ पर एक गरीब फकीर को रेत में बैठा जाड़े से टिटुरते देखा। उन्होंने तुरन्त अपनी ओढ़ी दुलाई उसे दे दी और बिना दुलाई के घर वापस आ गये। उस दिन रात भर खद एक चादर ओढ़ कर जाड़ा काट दिया। सवेरे जब बाबा ने पूछा कि दुलाई क्यों नहीं ओढ़ी, तो बोले कि एक फकीर जाड़ा खा रहा था, उसे दे दिया। बाबा ने उसी दिन शाम तक उनको नयी दुलाई ला दी।

भइया के साथ ऐसी दूसरी घटना थी, जब कि एक बार काम पर जा रहे थे। उन्होंने एक आदमी को फुटपाथ पर कराहते हुए देखा। उसके पास गये और उससे पूछा कि तुम्हें क्या तकलीफ है? उसने बताया कि गठिया ने दोनों टेहुनों को पकड़ रखा है। चला नहीं जाता। यहाँ अपना कोई नहीं। भूखा मर रहा हूँ। भइया ने एक आदमी को जो कि उनके यहाँ ही काम करता था, उसे रोककर इक्का बुलवाया और उस गरीब बीमार को अपने घर ले आये। डाक्टर को बुलाकर दिखाया। एक माह तक इलाज चलता रहा। वह आदमी ठीक हो गया तो उसे अपने यहाँ ही कारखाने में काम दिलवा

दिया। उसने वहीं काम किया और आदमी हो गया। इस तरह कितने ही काम वे करते रहते थे। वे जरा भी नहीं सोचते थे कि इसमें हमारा पैसा खर्च हो जायगा। अपने को कष्ट में डाल कर भी दूसरों की सहायता करने में वे कभी पीछे नहीं रहते थे।

सन् १९३३ में, उन्होंने मुझसे होमियोपैथिक दवा रखने के लिए कहा। मैंने आर्डर देकर दवा मँगवाई। दवा आ गयी और उनकी इच्छा से मैंने सबको, अमीर हो या गरीब, मुफ्त दवा देना आरम्भ किया।

वे अपने परिवार वालों की सहायता में भी आगे रहते थे। जिसको तकलीफ में देखते, अपने यहाँ ले आते। पढ़ाते लिखाते और उसे कोई काम सिखाते फिर किसी कारखाने में काम दिला देते।

हम लोगों को अपने ननिहाल में जायदाद मिली थी। लेकिन जब उन लोगों का पत्र आया कि हम लोग अपना हक लेने आये तो भइया बोले, "देखो, नाना जी की जायदाद हम लोगों को नहीं लेनी चाहिए। हमें तो उनकी जायदाद उस पात्र को देनी चाहिए जो उनके घर पर रह कर, उनके घर में रोज चिराग जला सके।" इस प्रकार जहाँ उन्होंने स्वयं उसका त्याग किया, वहाँ मुझे भी उस त्यागने के लिए प्रोत्साहित किया।

भइया अपने स्वर्गवास से पहले से कहते थे कि "कचहरी चलो। फैक्टरी की जमीन में से कुछ जमीन तुमको देना चाहता हूँ। रजिस्ट्री कर दूँ।" मगर मैं कुछ ध्यान नहीं देता था। कभी कभी वे कहा करते थे कि जिन्दगी का कोई ठीक नहीं, कब किस समय हम न रहें फिर हमारी जिन्दगी का एक बहुत जरूरी काम रह जायगा। जब मई १९५६ में वे बहुत सख्त बीमार हुए तो अस्पताल से आने के बाद, अच्छे होने पर मुझको जबर्दस्ती अक्टूबर १९५६ में कचहरी ले गये और करीब ४५० वर्गगज जमीन मेरे नाम लिख दी।

भइया का स्वभाव जहाँ दयालु था, वहीं सरल भी। वे मनुष्य से नहीं, वरन् उसके दोषों से घृणा करते थे। इसी से आरम्भ से अन्त तक उनका

दृष्टिकोण सुधारवादी ही रहा। वे हर एक के गुण की कद्र करते थे। इसी सिलसिले में एक बहुत पुरानी घटना याद आती है। एक शादी में एक गाने वाली बाई जी बहुत ही सुन्दर भजन गा रही थीं। उस ईश्वर गुणगान वाले भजन से वे इतने प्रभावित हुए कि उन्होंने लोक मर्यादा का ख्याल किये बिना अपना शाल उस बाई जी को पुरस्कार स्वरूप दे दिया।

घर के नौकरों का भी वे पूरा ध्यान रखते थे। उन्हें परिवार के एक अंग के समान मानकर यथायोग्य व्यवहार करते थे। प्रायः वे छोटी उम्र के ही लड़के नौकर रखते। जैसे ही उसकी उम्र कारखाने में काम करने लायक हो जाती, उसे 'अप्रेन्टिस' के रूप में लगाकर कोई उद्योग सिखा देते थे, जिसे सीख कर वह अपना जीवन निर्वाह कर सकता था। किसी की मजबूरी से लाभ उठाना वे अमानवता, मनुष्यहीनता समझते थे।

भइया का मत था कि यदि उनकी भावनाएँ और आचरण शुद्ध होंगे तो उनका परिवार अवश्य सुखी होगा। आज उनकी सद्भावनाओं के प्रभाव से, उनके आशीर्वाद से, उनका परिवार भी फल फूल रहा है और उनकी इच्छाओं तथा उनके कार्य को पूर्ण करने में संलग्न है।

मुझे उन्होंने बहुत दिनों तक अपने साथ ही रखा। अन्त समय में वे हमारे पास ही रहे। कारखाने से मिला हुआ ही हमारा घर है। जब उस दिन उनको अपना स्वास्थ्य कुछ ठीक नहीं मालूम हुआ तो वे घर आ गये थे। उनकी अन्तिम सांस हमारे कमरे में छूटी। इसके पहले वे बोले कि "हम तो जा रहे हैं। बच्चों का ध्यान रखना।" फिर बोल न सके। मैंने राम जैसा भाई पाया था। आज हमारे पास उनकी स्मृतियाँ शेष रह गयीं हैं और हर कदम को मांगलिक कार्यों की ओर अग्रसर होने के लिए प्रेरित करती हैं।

कर्मठ समाज सेवी

● ओम्प्रकाश

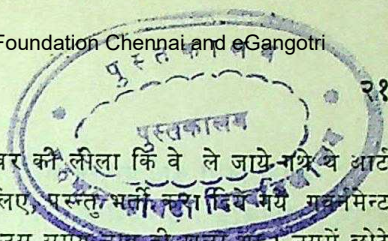
पिता जी सद्गुणों, सुविचारों एवं मानवीय भावनाओं से परिपूर्ण थे । वे एक साहसी, निर्भीक एवं धार्मिक पुरुष थे । उनके पास जो कुछ भी था, चाहे वह उनकी संपत्ति हो या आध्यात्मिक उपलब्धि, उनकी स्वयं की अर्जित थी । पिता जी के जीवन में बड़े-बड़े उतार चढ़ाव आये । पर अपने सुख के दिनों में उनके पास जो कुछ था, उन्होंने उसे सबके साथ मिल बाँट कर उपयोग किया तथा अपने संघर्ष के क्षणों में वे किसी के ऊपर बोझ नहीं बने । वे दूसरों को सहायता देते थे किन्तु स्वयं भगवान के सिवाय किसी दूसरे के सहारे नहीं रहे ।

वे एक ऐसे पारसमणि थे जिसके संसर्ग में आने वाला लोहा भी सोना बन जाता था । उनके साथ रहने से मनुष्य के हृदय में आध्यात्मिक भावनाएँ जाग्रत होती थीं । चरित्र निर्माण का प्रोत्साहन मिलता था तथा प्रगति की प्रेरणा मिलती थी । अपने सामाजिक जीवन में कार्य के समय वे हमेशा आगे रहे । संघर्ष में हमेशा उन सैनिकों के समान थे जोकि अगली पंक्ति में होते हैं । किन्तु प्रशंसा तथा फल का श्रेय लेते समय पीछे हो जाते थे । वे प्रशंसा तथा प्रसिद्धि से हमेशा दूर भागते रहे । उनका हृदय बड़ा कोमल तथा स्वच्छ था । हर छोटे बड़े व्यक्ति के वे मित्र थे । सबको वे मित्र की दृष्टि से देखते थे । धार्मिक सद्गुण, ईश्वर-प्रेम आदि गुण उन्हें विरासत में मिले थे । हमारे पूज्य बाबा (उनके पिता) बड़े निश्चल तथा साधु स्वभाव के थे । अपनी कमाई का बड़ा भाग वे हमेशा स्वजनों के लिए दे देते थे । उन्होंने अपने भतीजों को पढ़ाया । घर पर रहने वाले आश्रित व्यक्तियों की सहायता की । कभी अपने लिए अलग से कुछ संचित नहीं किया । हमेशा यही सोचते थे कि परिवार में लड़कों की योग्यता उनकी संचित पूंजी है ।

इसी प्रकार पूज्य दादी जी (पिता जी की माँ) भी बड़ी धार्मिक प्रकृति की थी। अपने मायके के पास एक नदी के किनारे रहने वाले योगी महात्मा परमहंस की वे वचन से ही भक्त थी। वे नित्य पूजा पाठ करने वाली तथा बड़ी ममतामयी महिला थीं।

पिता जी का वचन थोड़ा संघर्ष में बीता था। बाबा उन दिनों मानसिक रूप से वैरागी हो गये थे। कारण, पिता जी के बड़े भाई की मृत्यु हो गयी थी। पिता जी के बड़े भाई बहुत तेजस्वी एवं मेधावी विद्यार्थी थे। उनका ब्रिज उसी वर्ष हुआ जिस वर्ष उन्होंने मैट्रिक (हाई स्कूल) की परीक्षा दी थी। परन्तु परीक्षा फल निकलने से पूर्व ही वे नहीं रहे। परीक्षा में वे प्रथम श्रेणी में आये थे। परिवार के ऐसे योग्य बालक की अकाल मृत्यु से उनको बड़ा सदमा पहुँचा था। इस कारण बाबा का अपने अन्य पुत्रों में कोई विशेष दिलचस्पी न लेने के कारण तथा उनके प्रति एक निराशा जनक दृष्टिकोण रखने के फलस्वरूप पिता जी का विद्यार्थी काल अच्छी तरह नहीं बीता। इसी समय वे गाँव से जौनपुर शहर पढ़ने के लिए भेजे गये थे। हम लोगों का एक मकान जौनपुर शहर में भी था। जहाँ पर शहर में नौकरी करने वाले परिवार के लोग तथा शहर में पढ़ने वाले विद्यार्थी रहा करते थे। यह मकान 'डेरा' कहलाता था। हनुमान जी की पूजा करने वाले तथा व्यायाम में रुचि रखने वाले डेरा के लोग कुछ साधारण विद्यार्थी के प्रति अच्छी भावना नहीं रखते थे। सब सम्बन्धियों में ऐसी धारणा थी कि यह बालक शायद ज्यादा पढ़ लिख न सके या एक बहुत ही साधारण व्यक्ति रहे। परन्तु इसी बीच उनका सम्पर्क आर्य समाज के स्वामी ओंकारानन्द सरस्वती से हुआ। स्वामी जी उन दिनों जौनपुर में विद्यार्थियों का एक छात्रावास चलाते थे। पिता जी ने संध्या, हवन तथा धार्मिक कृत्य की पद्धति स्वामी जी से सीखी। जीवन भर स्वामी जी का प्रभाव उन पर रहा। अनेक संकट एवं संशय के क्षणों में स्वामी जी उनका मार्ग दर्शन करते थे।

इसी बीच वे एक या दो बार परीक्षा में असफल भी हो गये। इस पर यह समझकर कि वे अब आगे पढ़ नहीं सकते, उन्हें लखनऊ के आर्ट एण्ड



ड्राइंग स्कूल में पढ़ने भेजा गया। ईश्वर की लीला कि वे ले जाये-गये थे आर्ट एण्ड ड्राइंग स्कूल में भर्ती कराने के लिए, परन्तु भर्ती नहीं दिया गया। गवर्नमेन्ट टेक्नीकल इन्स्टीट्यूट में, जो कि उस समय बना ही नुवा था। उसमें छोटे लड़कों को लेकर उन्हें इंजीनियरिंग के लिए तैयार कराया जाता था। गुरु के कुछ महीनों के बाद उनमें एकदम परिवर्तन हुआ।

पढ़ाई में उन्होंने ध्यान देना शुरू किया। प्रथम परीक्षा में वे अपने क्लास में प्रथम आये। उन्हें वजीफा मिलना शुरू हुआ। फिर तो अपने विद्यार्थी जीवन भर पढ़ने में तेज रहे।

लखनऊ के होस्टल का नया बानावट था। आयु समूह से उनका बराबर सम्पर्क रहा। वे 'आर्य वीर दल' के सदस्य बन गये थे। लखनऊ विश्व-विद्यालय तथा मेडिकल कॉलेज के कई सदाचारी तथा मेधावी छात्र उनके साथी थे। लखनऊ की उन दिनों की बाढ़ और महामारी में वे अपने साथियों के साथ सहायता कार्य में लगे रहे। उन्होंने नीचे पानी में डूबे इलाकों से स्त्री बच्चों को पीठ पर लाद कर निकाला और बीमारों को दवा बांटी।

विद्यार्थी जीवन में वे प्रातःकाल बहुत तड़के उठते थे। व्यायाम तथा पूजा पाठ करते थे। उनका स्वास्थ्य बहुत अच्छा था। व्यक्तित्व बड़ा तेजस्वी था। वे बड़े मितव्ययी थे। जो कुछ वजीफा मिलता था, उसमें से भी बचाकर अपने छोटे भाई बहनों के लिए छुट्टियों में कुछ न कुछ ले आते थे। अपने छोटे भाई बहनों से बड़े मधुर सम्बन्ध रखते थे। गाँव के बाल सहपाठियों से वे पूर्ववत् सरलता तथा सहजता से व्यवहार करते थे।

विद्यार्थी जीवन की समाप्ति पर एक बड़ी केमिकल बनाने वाली फैक्टरी में इंजीनियर के उच्च पद पर नियुक्त हुए। उन्होंने बड़ी योग्यता तथा लगन से अपना कार्यकाल व्यतीत किया। उनकी ईमानदारी और लगन की प्रशंसा उनके अधिकारीगण सदैव किया करते थे। अपने कार्यकाल में उन्होंने नयी नयी मशीनें तथा प्लान्ट बनाये, सुधार तथा ईजाद किए।

अपना निजी कार्य प्रारम्भ करने की उनकी सदा से इच्छा थी । इसी कारण उन्होंने नौकरी से जल्दी ही अपने को मुक्त कर लिया ।

उनका सामाजिक जीवन आर्य समाज की सेवा तथा संगठन में बीता । वह ठोस सेवा कार्य में विश्वास करते थे । आर्य समाज सीसामऊ की उन्होंने स्थापना की । उसमें उन्होंने काफी धन भी दान दिया पर अपने नाम का पत्थर न लगने दिया । कई असहायों को अन्य धर्म से शुद्ध कर आर्य बनाकर उन्हें नई रोशनी दी । कई बार सड़क पर पड़े असहाय एवं अपंग लोगों को वे उठा लाये और घर पर रख कर उनकी दवा की ।

उन्हें ईश्वर पर अटूट विश्वास था । वे मुसीबत में सदा ईश्वर पर भरोसा रखते थे । वे कहते थे कि उनके सारे कार्य ईश्वर की इच्छा से पूर्ण हो जायेंगे ।

अपने जीवन काल में उन्होंने, सिंहासिनी इंजीनियरिंग वर्क्स की नींव रखी । यद्यपि उनके लगाये इस वृक्ष के फल का आनन्द वे स्वयं न उठा पाये, किन्तु उनकी आत्मा को इससे सुख मिलता होगा कि उनके परिवार तथा बहुत से अन्य लोग उनके मधुर फलों का आनन्द पा रहे हैं ।

जिस प्रकार के कर्मयोगी वे थे, उसी प्रकार उनकी मृत्यु भी हुई । वे कहते थे, विस्तर पर पड़े रहकर और घिस घिस कर वे नहीं मरेंगे । उसी प्रकार क्षण भर में उनके प्राण पखेरू उड़ गये । मृत्यु के पूर्व उन्होंने ईश्वर का स्मरण किया और विस्तर से नीचे उतर आये ।

ऐसे सरल, उदार तथा धार्मिक आदर्श पुरुष से हमें तथा समाज को हमेशा प्रेरणा मिलती रहेगी ।

स्नेह की मूर्ति

● कामिनी

आज मैं अपने पूज्य श्वसुर, जिन्हें मैं बाबू जी कहा करती थी, उनके विषय में कुछ लिखने बैठी हूँ। वे तो महान आत्मा थे और मेरी बुद्धि बहुत छोटी है। अतः मैं उनके विषय में अपने भावों को व्यक्त करने में सफल होऊँगी, इसमें शंका है। तथापि मैं अपनी अल्प बुद्धि के अनुसार श्रद्धा के कुछ स्मन अर्पित कर रही हूँ।

मेरा विवाह उनकी दृढ़ कर्त्तव्य परायणता एवं साहस का प्रतीक था। क्योंकि मेरे विवाह की निश्चित तिथि के केवल सात दिन पूर्व ही हमारी सास का, कैंसर रोग के कारण स्वर्गवास हो गया था। इस दशा में किसी भी समाज में उसी निश्चित तिथि पर, अर्थात् मृत्यु के सात दिन बाद विवाह सम्भव नहीं था। और परिस्थिति यह थी कि वह अन्तिम लग्न थी और उसके दो माह बाद ये (पतिदेव) अमेरिका जा रहे थे।

ऐसी परिस्थिति में विवाह की तिथि अनिश्चित काल के लिए बढ़ानी पड़ती। लेकिन बाबू जी की महानता को कौन छू सकता था, जिन्होंने अपनी भावनाओं पर नियन्त्रण रख कर कन्या एवं कन्या पक्ष वालों की असुविधाओं पर विचार किया। वे जानते थे कि लड़की की शादी में लोग किन कठिनाइयों से पैसा एकत्र करते हैं। मध्यमवर्गीय लोगों में, प्रायः सभी को कुछ पैसा उधार लेना पड़ता है। ऐसी स्थिति में जबकि विवाह की तैयारियाँ पूरी हो चुकी थीं, शादी नहीं करने से एक ओर तो रुपये का अपव्यय होता ही, दूसरी ओर समाज भी लड़की को तरह-तरह से लांछित करता। अतः उन्होंने संकल्प किया कि शादी निश्चित तिथि पर ही होगी। उन्होंने श्मशान घाट से लौटते समय ही हमारे पिता जी कह दिया था कि आप विवाह की तैयारी करें। विवाह

निश्चित तिथि पर ही होगी । क्योंकि ऐसा न करने पर आप लोगों को बहुत अमुविधा होगी । फिर आप समाज में किस किस को समझावेंगे कि विवाह की पूरी तैयारी होने के बावजूद विवाह क्यों नहीं हो सका । जब ये (पतिदेव) जमशेदपुर से गये तो पिता जी ने अपना निश्चय इन्हें भी सुनाया और विवाह करने के लिए तैयार कर लिया । शांति-हवन के बाद जब मेरे पिता जी और भाई गये तो बाबू जी ने कहा कि विवाह हमें निश्चित तिथि से पहले ही करना होगा । क्योंकि इनकी छुट्टियाँ समाप्त हो रही थीं । इस प्रकार अपनी समस्त भावनाओं को कर्त्तव्य के समक्ष दवा लिया और सास जी मृत्यु के पाँचवें दिन ही हमारी शादी बड़े उत्साह से करवायी और स्वयं को दृढ़ करके प्रत्येक रस्म मंगल गीतों की मधुर ध्वनि के बीच सम्पन्न करवायी । जहाँ घर में सबसे कह कर गाने गवाये, वहाँ हमारे पिता जी से कहा कि बाजे और रोशनी में किसी प्रकार की कटौती नहीं होनी चाहिए । सम्भवतः उनके हृदय में यह बात भी होगी कि अम्मा जी (सास जी) के अधूरे कार्य को पूरा करने से उनकी आत्मा को शांति मिलेगी । क्योंकि अम्मा जी ने स्वयं अस्वस्थ होते हुए भी विवाह की तैयारी आरम्भ करवा दी थी । यह एक वीर पुरुष की अपनी अर्द्धांगिनी धर्मपत्नी को श्रद्धांजलि थी । इन सब वैवाहिक कार्यों के बीच, उनके हृदय की पीड़ा का अनुमान किसको नहीं था ? सभी ओर से उनके साहस की भूरि-भूरि प्रशंसा हो रही थी ।

हमारे बाबू जी स्नेह की मूर्ति थे । उनके हृदय में यदि बेटी के लिये प्यार था तो बहुओं के लिए भी वैसा ही प्यार था । हमारी हर छोटी से छोटी आवश्यकता का वे सदैव ध्यान रखते थे । हमारी थोड़ी सी पीड़ा भी उन्हें बेचैन कर देती थी । हमें उनका स्नेहामृत सदैव मिलता रहा । वे हमारे साथ खेलते थे, विचार विनिमय करते थे और बड़े होने के नाते बहुत ही सरल शब्दों में हमें कर्त्तव्य बोध भी कराते थे ।

बाबू जी एक सच्चे आर्य समाजी थे । वे अपनी जान की बाजी लगाकर भी कर्त्तव्य पालन करते थे । जब साम्प्रदायिक दंगों (१९३१) में अन्य सम्प्रदाय वालों की योजना हमारे पड़ोस के मन्दिर को ध्वस्त करने की थी । किसी

प्रकार एक डेढ़ हजार विपक्षियों का सामना करने के लिए, अपनी दुनाली बंदूक और अपने दस बीस साथियों के साथ चल पड़े थे। साथियों ने जब देखा कि विपक्षी दल बहुत सबल है तो वे पीछे से भाग निकले। लेकिन बाबू जी आगे ही बढ़ते गये। उन्हें पीछे देखने का अवकाश ही कहाँ था ? मन्दिर पर पहुँच कर जब अपने साथियों की ओर देखा तो अपने को एकदम अकेला पाया। लेकिन वे घबराये नहीं, वरन् अदम्य साहस और बुद्धिबल से अकेले ही विपक्षियों को मन्दिर से निकलने के लिए बाध्य कर दिया। इस प्रकार एक आर्य समाजी होते हुए भी सनातनधर्मी मन्दिर की रक्षा के लिए अपने प्राणों की बाजी लगाकर अपना कर्तव्य पूरा किया।

हमारे बाबू जी की दृष्टि बहुत पैनी थी। घर में कब और क्या हो रहा है, इसका पूरा ध्यान रखते थे। कब कौन घर में आता है, कौन जाता है, तथा घर में प्रत्येक सदस्य उचित समय पर घर आता या नहीं; इस पर उनकी सदैव दृष्टि रहती थी। वे घर के प्रत्येक सदस्य को माला के पवित्र पुष्प की भाँति गुंथा हुआ देखना चाहते थे। प्रायः ही भाई साहब से हम दोनों बहुओं के सम्बन्ध में पूछा करते थे।

बाबू जी के विचार बहुत उदार थे। वे विचारों को दूसरों पर थोपना नहीं चाहते थे। वे दूसरों के विचारों को बहुत ध्यान से सुनते थे। वे आर्य समाजी थे लेकिन कभी भी मूर्तिपूजा या व्रत उपवास के लिए रोकते नहीं थे। वरन् प्रायः पूछा करते थे कि तुम मूर्ति पूजा क्यों करती हो ? और मैं जो कुछ भी कहती, उसे ध्यान से सुनते थे।

संसार में दूसरों की मदद कैसे की जा सकती है, यह वह बड़े सरल शब्दों में बताया करते थे। वे इस बात पर हमेशा बल देते थे कि 'कर्ज और मर्ज' से सदैव सावधान रहो। दोनों को ही बढ़ने मत दो। वे चाहते थे कि इस सिद्धान्त को हम लोग अपने जीवन में अपनायें।

भ्यवहारिकता की सीमा भी उनसे अच्छी नहीं रह गयी थी। उनका कहना था कि अपने व्यवहार में सदैव सफाई रखो। किसी की कोई वस्तु तुम्हारे

पास है तो उसे वापस कर दो। इसी प्रकार यदि तुम्हारी कोई चीज किसी के पास है तो वापस माँग लो। लेन देन में पैसा, व गहनों के विषय में सदैव सावधान रहो। इस सम्बन्ध में किसी पर विश्वास पर मत करो। यहाँ तक वे इस सिद्धान्त का पालन करते थे कि जब मैं पहली बार कानपुर से राउरकेला (उड़ीसा) जा रही थी तो मैं अपने सब गहने लेकर बाबू जी के पास गयी और उन्हें सौंपे कि वे इनको 'लाकर' में रख देंगे; तो वे बोले, "तुमने लिस्ट बनायी है कि क्या क्या चीजें मुझे दे रही हो?" मुझे हँसी आई, मैंने कहा, "सब कुछ आपका ही है और मैं तो आपको ही दे रही हूँ। फिर इसमें लिस्ट का प्रश्न कहाँ उठता है?" यह सुनकर उन्होंने कहा कि "पैसा और गहना के विषय में किसी का विश्वास मत करो।" और स्वयं बैठ कर उन्होंने तीन लिस्टें बनवायीं। उनमें से एक मुझे दी, एक स्वयं रखी, तथा तीसरी गहनों के बक्स में रखी। फिर बोले इस बार तो मैं अपने नाम से जमा करा देता हूँ किन्तु अगली बार तुम्हारे यहाँ आने पर तुम्हारे नाम जमा कराऊँगा।

मैं जब भी उनके पाँव छूती थी, उनका आशीर्वाद होता, 'स्वस्थ रहो, सुखी रहो, सम्पन्न रहो। ईश्वर तुम्हारी सभी इच्छायें पूरी करे।' आज भी मुझे उनका स्नेह, कर्त्तव्य के प्रति उनकी दृढ़ता और लग्नशीलता एवं सरलता याद आती है तो मेरा हृदय स्वयं ही श्रद्धा से भर जाता है। वे मुझे बहुत प्यार करते थे। मेरा बहुत ध्यान रखते थे। उन्होंने श्वसुर के स्थान पर पिता का प्यार मुझे दिया था। साथ ही सास के स्थान पर माँ के प्यार से मेरी झोली भर दी थी।

यद्यपि नियति ने उन्हें हमसे अलग कर दिया, फिर भी मुझे लगता है कि बाबू जी आज भी हमारे हृदय की आवाज बनकर हमारा पथ प्रदर्शित कर रहे हैं।

श्रम के आराधक

 रुद्र प्रकाश

आज मैं अपने पूज्य पिता जी के विषय में जब लिखने बैठा हूँ तो अपने बचपन से यौवन काल तक के अनेक क्षणों के चित्र उभर कर मेरे सामने आते हैं। वैसे तो हर एक के लिए उसके माता-पिता आदर्श होते हैं एवं उसके हृदय में उनके प्रति असीमित श्रद्धा होती है, पर इस विषय में हम सब भाई-बहन अधिक भाग्यशाली रहे हैं। वे स्वयं जहाँ आदर्श तथा कर्तव्यपरायण पुरुष थे, वहाँ हम लोगों के लिए पिता के अतिरिक्त धर्मगुरु और सच्चे पथ प्रदर्शक थे। वे केवल कथन पर ही विश्वास नहीं करते थे बल्कि उसे उचित क्रियात्मक रूप देने पर उनकी आस्था थी। जो बात उचित समझते, उसे अनेक कष्ट सह कर भी करते थे। उनकी कही बात, लगता था कि सीधे हृदय से निकल रही हो। सम्भवतः उनकी प्रत्येक बात इसीलिए अत्यधिक प्रभावशाली होती थी।

पिता जी श्रम को श्रद्धा की दृष्टि से देखते थे। उसे न तो हीन समझते थे और न करने में शर्म ही महसूस करते थे। इस सिलसिले में एक घटना है। वे इन्जीनियरिंग पास करके कानपुर आये थे—एग्जिनिस्ट्रिशिप के लिए। नयी नयी जगह थी तथा जान पहचान भी कम। लकड़ी सम्बन्धी काम करने का तो उन्हें बचपन से ही शौक था। उनके पास ढेर सारे लकड़ी के काम के औजार भी थे। ये सब औजार उन्हें विद्यार्थी जीवन में अनेक अवसरों पर पुरस्कारों के रूप में मिले थे। जब एक बार उन्हें कुछ पैसों की आवश्यकता पड़ी तो उन्होंने लकड़ी का कलमदान, कलम इत्यादि सामान बनाया तथा बेच कर पैसे प्राप्त किये। इस प्रकार स्वाभिमान पूर्वक उन्होंने अपनी आर्थिक मुसीबतों पर विजय पायी।

वह श्रम तथा स्वावलम्बन का महत्व भली भाँति समझते थे और इसी लिए हम लोगों में बचपन से ही श्रम करने का अभ्यास डालना प्रारम्भ कर दिया था। हम लोग तब छोटी कक्षाओं में पढ़ते थे फिर भी गर्मी की छुट्टियों में पिता जी हमें अपने खुद के कारखाने के ढलाईघर में काम करने के लिए भेज देते थे। इस प्रकार से हमें बताया करते थे कि विदेशों में बच्चे अवकाश के समय स्वयं श्रम करके धनोपार्जन किया करते हैं। उनकी इसी प्रेरणा के फलस्वरूप जब हम लांग १० या ११ वर्ष की आयु के थे, तो अपने एक मौसा जी से स्याही बनाना सीख, मैंने तथा मेरे मंझले भाई ने मिलकर विभिन्न प्रकार की स्याही बनाने की एक छोटी सी संस्था बनायी। उसके प्रचार के लिए गर्मी की छुट्टियों में हम लोगों ने घूम घूम कर, स्याही बेचना शुरू की। पिता जी के स्थान पर कोई अन्य होता तो कहता कि जिन बच्चों के पिता एक बड़ी फर्म के उच्चपदाधिकारी हों, उन्हें किस बात की कमी है कि छोटी उम्र में श्रम करें। मिथ्याभिमान के स्थान पर पिता जी ने श्रम के लिए प्रोत्साहित किया।

स्वामी दयानन्द के प्रति उनकी अपार श्रद्धा थी। वे उनके बताये हुए मार्ग के अनुसार, हमें धार्मिक शिक्षा देते थे। उन्होंने हमें संध्या ओर हवन आदि करना सिखाया। मन्त्रों का शुद्ध उच्चारण सिखाने के लिए एक विद्वान को नियुक्त किया। वे स्वामी दयानन्द के वास्तविक अनुयायी थे। केवल आत्मोन्नति से संतुष्ट न होकर, आर्य समाज आन्दोलन द्वारा, मुख्य रूप से समाज से पिछड़े वर्ग की उन्नति की ओर, विशेष प्रयत्नशील थे।

पिता जी जिस कारखाने में मुख्य इंजीनियर पद पर थे, वहाँ का कार्य बड़ी ईमानदारी एवं लगन से करते थे। जिस प्रकार ईश्वर का सच्चा आराधक हर क्षण ईश आराधना में विताता है, ठीक उसी प्रकार पूज्य पिता जी भी, हर घड़ी, कारखाने की टेक्निकल समस्याओं के समाधान के विषय पर सोचा करते थे। प्रत्येक क्षण उनका लक्ष्य उनके समक्ष रहता था और इसीलिए वह हर लक्ष्य प्राप्त कर सके थे। उन्होंने कारखाने में अनेक प्रकार के सुधार किए। उनकी सुधार पद्धति में कुछ ऐसी विशेषताएँ थीं कि जटिलताएँ सरल

रूप ले लेती थीं। यह उनकी कार्य क्षमता और निपुणता का प्रतीक था। मुझे इस बात का प्रत्यक्ष रूप से साक्षात्कार कलकत्ते में प्रतिष्ठित एक विदेशी फर्म में हुआ। उनकी मशीन का मूल डिजायन "Mono Block Casting" का हुआ करता था। उसे बनाने और उसके पुर्जे फिट करने का कार्य बड़ा जटिल था। उन्होंने उसे तीन भागों में बड़े सुन्दर ढंग से काट कर सुधारा जिस से ढालने, बनाने तथा फिट करने का कार्य अति सरल हो गया। कुछ पूर्व वर्ष से उस फर्म ने भी अपने मूल डिजायन से हटकर ठीक उसी प्रकार तीन भागों में बांट कर इस मशीन को बनाना आरम्भ किया है। यह देख कर मुझे अत्यधिक प्रसन्नता हुई कि जो सुधार पिता जी ने ३० वर्ष पूर्व किया था, इन लोगों ने अब आरम्भ किया है।

पिता जी अपना कार्य सच्चे उत्साह तथा निपुणता के साथ करते थे। वे चाटुकारिता में विश्वास नहीं करते थे। कभी भी चाटुकारिता में उलझ कर न तो अपने कार्य की अवहेलना की और न ही अपना स्वाभिमान खोया। इस बात से अप्रसन्न होकर उनके चाटुकारिता प्रिय अंग्रेज अफसर उनकी शिकायत, बड़े डाइरेक्टर Sir Tracy Gavin Jones से कर दी। डाइरेक्टर साहब भारत आये हुए थे और पिता जी के साथ कारखाने का निरीक्षण कर रहे थे। उन्होंने पिता जी से स्पष्टीकरण मांगा। उस समय वह एक मशीन के पास खड़े थे जिसे पिता जी ने एक कठिन समय में, अपने निरीक्षण में बड़ी मेहनत और निपुणता से बनवाया था। उससे कारखाने का उत्पादन बन्द होने से बच सका था। पिता जी तो केवल अपना अपना कर्म करना जानते थे, उन्हें आत्म प्रशंसा से नफरत थी फिर भी मिथ्यारोपण उन्हें चुभ गया। वह बोले—“आज तक मैं कारखाने को अपना जानकर काम करता रहा हूँ और अन्य किसी बात की चिन्ता नहीं की।” इतना कह कर पास की मशीन के बारे में स्मरण कराया तथा अपने द्वारा किये हुए अनेक कार्यों का व्योरा देते हुए सिद्ध कर दिया कि जितना पैसा कम्पनी उन्हें वेतन स्वरूप देती है, उससे कई गुना अधिक, सुधार-सुझाव द्वारा एक माह में कम्पनी को वापस कर देते हैं।

पिता जी चरित्रवान पुरुष थे। उनके कार्य के विषय में किसी ने सन्देह प्रकट किया, यह उन्हें असह्य हो गया। उन्होंने उसी शाम को बड़ी विनम्रता के साथ अपना त्यागपत्र दे दिया किन्तु बाद में डाइरेक्टर साहब ने त्यागपत्र स्वीकार करने के बजाय उन्हें ५००० रुपये की धन-राशि पुरस्कार स्वरूप प्रदान की तथा कुछ और रकम जो पिता जी ने कम्पनी से कर्ज के रूप में ली थी, माफ कर दी।

पिता जी अपने कर्तव्य के विषय में बहुत कुछ सजग थे। एक बार १९४२ में पिता जी अपने परिवार समेत गाँव गये हुये थे। उसी बीच अगस्त क्रान्ति का आन्दोलन प्रारम्भ हो गया जिसके फलस्वरूप रेल, तार और डाक सम्बन्धी सारी व्यवस्थाएँ टूट गयी थीं। छुट्टियों के समाप्त होने पर उन्हें अपनी नौकरी पर पहुँचना जरूरी था अतः वह इक्का आदि सवारियों द्वारा गाँव से चल पड़े। फैजाबाद तक ही गये थे कि अज्ञात प्रेरणावश वापस चले आये। उस दिन बुढ़वा मंगल का पर्व था तथा गाँव में मेला लगा हुआ था। मेले से खबर मिली कि अपने गाँव में स्थापित सहकारी बैंक को लूटने की योजना कुछ डाकूओं ने बनायी है। पिता जी अपनी एक मात्र दुनाली बन्दूक लेकर कुछ साथियों समेत सारी रात पहरा देने को तैयार हो गये। कुछ राति बीतने पर उन्होंने, जिस बाग में डाकू ठहरे हुये थे, उस ओर पाँच-छः हवाई फायर किये। डाकू डर कर भाग गये। और इस प्रकार पिता जी ने बैंक को लूटने से बचाया। जब दूसरे तीसरे दिन बाहर से मदद आ गयी तो अपनी बन्दूक गाँव की रक्षा के लिए छोड़कर पुनः कानपुर के लिये चल पड़े।

उनके एक चचेरे भाई थे जो कि डिस्ट्रिक्ट बोर्ड में सेक्रेटरी थे और अत्यन्त परोपकारी थी। एक बार किन्हीं कारणोंवश उन्होंने गाँव के एक बुजुर्ग से (५००) की धनराशि उधार ली किन्तु असामयिक मृत्यु के कारण अदा न कर सके। एक बार बुजुर्ग ने पिता जी से इस ऋण का जिक्र किया। पिता जी के हृदय में अपने भाई के लिए बड़ी श्रद्धा थी। अतः उनके ऋण को चुकाना अपना कर्तव्य समझकर उन्होंने अपने वेतन से उसे चुका दिया।

पिता जी में किसी प्रकार का व्यसन न था तथा उनका रहन-सहन भी

प्रकट सादा था। वे अपने कपड़ों और पहनावे के विषय में उदासीन थे। लेकिन माँ इस बात पर ध्यान रखती थीं कि सब लोग ठीक प्रकार से कपड़े पहनें। यहाँ तक कि पिता जी के कपड़े भी माता जी चुपचाप सिलवा लेती थीं। जब मौके पर उन्हें ठीक कपड़े मिलते तो बहुत प्रसन्न होते इसी प्रकार हम बच्चों के लालन-पालन तथा शिक्षा सम्बन्धी अन्य विषयों पर माता जी और पिता जी एक दूसरे के सम्पूरक थे। पिता जी उच्च शिक्षा के स्थान पर प्रैक्टिकल ट्रेनिंग पर विश्वास रखते थे किन्तु माता जी की इच्छा थी कि बच्चे विश्वविद्यालय में उच्च शिक्षा ग्रहण करें। उन्होंने हर प्रकार के संकटों के बावजूद हम सब भाई बहनों को यथायोग्य उच्च शिक्षा दिलवायी। भाइयों को टेक्निकल इंजीनियरिंग की शिक्षा मिली। बड़े भैया को विदेश भेजा तथा उन्हें उच्च ट्रेनिंग दिलवायी। ये सब कार्य उनके अत्यधिक आत्मबल और साहस के कारण ही हो सके थे। उनके पवित्र कार्य क्षेत्र में माता जी ने सदैव उनका साथ दिया। वह संचित धन एवं ज़ेवर सब कुछ पिता जी के कर्त्तव्य की बलिबेदी पर न्योछावर कर चुकी थीं। विधि को इतने से भी सन्तोष न हुआ। उसने पिता जी की सबसे कड़ी परीक्षा ली, माता जी को उनसे छीन लिया। पिता जी का हृदय ऐसी जीवन संगिनी को खोकर एकदम टूट गया लेकिन इस पर भी वे अपने कर्त्तव्य का पालन करते हुए हम लोगों को धैर्य बँधाते रहे।

पिता जी द्वारा स्थापित गृह उद्योग तब शिशु था। वह उसे पुष्ट करने में लगे रहे और जब स्थिति बदली तो उसके महान परिणाम भोगने की उनकी इच्छा समाप्त हो चुकी थी। १७ अगस्त १९४९ की दुखद शाम को साढ़े पाँच बजे के लगभग, वह परिवार रूपी जहाज की बागडोर भैया को सौंपकर, शांति पथ पर चल दिये। उनके चरण चिन्ह ही हमारे लिए प्रेरणाप्रद हैं जो निरंतर हमें लक्ष्य की ओर प्रेरित करते रहते हैं।

भूखे-नंगों के सेवक

● श्रीमती ललिता श्रीवास्तव

मेरे पूज्य पिता जी, आज जिनके स्वर्गवास को पूरे ग्यारह वर्ष बीत गये, एक महान आत्मा थे। उन्होंने कभी स्वयं के सुख के बारे में नहीं सोचा। सदैव दूसरों की सेवा में रत रहते थे। वे ईश्वर पर विश्वास रखते थे तथा कर्म को अधिक महत्व देते थे।

उनका जीवन बड़ा नियमित था। प्रातः चार बजे उठकर नित्य कर्म से निवृत्त हो आसन प्राणायाम करते, संध्या करते। फिर कुछ कविता, भजन आदि लिखते और गाते थे। उनके कुछ भजन आज भी मेरे कानों में गूँजा करते हैं। वे गाया करते थे—

प्रभु की आरती मैं गाऊँ ।
गगन थाल हाथ में लेकर
तारों के मोती सजाऊँ ।

...

सब ठाठ पड़ा रह जायगा,
जब लाद चलेगा बंजारा ।

पिता जी हर रविवार को आर्य समाज जाते। वहाँ के कार्यक्रम समाप्त होने पर हरिजन वस्ती में जाकर बच्चों को पढ़ाते थे। उन्हें पुस्तकों, कपड़ों इत्यादि की सहायता देते थे। आर्य समाज के प्रति उनकी गहरी आस्था थी। हर संस्कार वैदिक रीति से संपन्न करते। प्रायः प्रत्येक त्योहार को सुब मिल कर हवन किया करते थे। किन्तु इसके साथ ही हर धर्म का वे आदर करते थे। प्रायः ही वे बिना किसी पूर्व योजना के श्रीसत्यनारायण की कथा भी

घर में कराते थे। अक्सर हम सब बच्चों को बिठा कर वे अपने अनुभव इत्यादि सुनाया करते। हमें वे यही शिक्षा देते कि अपने से बड़ों का सदैव आदर करो। सदा नियम से रहो। हम बच्चों को कभी हतोत्साहित नहीं होने देते थे। एक बार जब मैं परीक्षा में अनुत्तीर्ण हो गयी तो उन्होंने बहुत ढाढस बंधाया। उन्होंने कहा, “तुम फिर पढ़ो। जीवन में हार जीत लगी ही रहती है।” आज भी निराशा के क्षणों में जब उन्हीं के कथन “Failures are the Pillars of success” की अनुगूँज सुनती हूँ तो मन को बड़ा धैर्य मिलता है।

घर में कोई मेहमान आ जाते तो वे स्वयं ही उनका सत्कार करते थे। मन में यही रहता था कि उनके आदर सत्कार में कोई कमी न रहे। अक्सर एक अनाथ बूढ़ा ‘बाबू जी, बाबू जी’ कहकर आवाज लगाते हुए आता था। वह जाति का चमार था। पिता जी उसे बैठाकर अपने हाथों से खिलाते थे। एक बार आर्य समाज से लौटते समय किसी गरीब ने कमीज माँगी, पिता जी उसको कमीज देकर आधी धोती ओढ़े हुए घर आ गये। भगवान को प्रसाद चढ़ाने से अधिक उन्हें भूखे को भोजन कराने में अधिक सुख मिलता। उन्होंने कितने ही असमर्थ लोगों को पढ़ाया; नौकरी दिलायी।

कितने ही संकट के दिन हम सबने हंसकर गुजार दिये। आज पिता जी हमारे बीच नहीं हैं, जब कि उन्हें अभी तक हम सबके बीच रहना था; यह देखने के लिए उनके आशीष एवं उन्हीं के पुण्य प्रताप से उनके सभी बच्चे प्रसन्न हैं तथा सभी ऊँचे विचार रखते हैं। आगे भी उनके विचारों, कर्मों एवं शिक्षा को हम सब सदा अपनाते रहें, ईश्वर से हमारी यही प्रार्थना है। हम लोग आज जो कुछ भी हैं, उन्हीं के आशीर्वाद से हैं और जब तक हम हैं, उनकी आत्मा सदैव हमारे साथ रहेगी।

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः।

(१७ अगस्त, १९७०)

सच्चे प्रेरक

● श्रीमती शान्ति श्रीवास्तव

मेरा विवाह १९४८ में हुआ था और मैं उसी समय से इस परिवार का अंग बन गयी थी। ग्यारह वर्षों तक पिता जी के साहचर्य का सौभाग्य प्राप्त हुआ। इस अवधि में मैंने उनके जितने गुणों को देखा परखा, उन्हें व्यक्त करने के लिए मेरे पास शब्द नहीं हैं। फिर भी मुझे आज उनके कुछ विशेष गुणों का बार-बार स्मरण आ रहा है।

पिता जी को अपनी माँ (दादी जी) से बहुत ही लगाव था।। ऐसा अब देखने में नहीं आता। वे उनका अत्यधिक ख्याल रखते और उनकी सेवा तन मन धन से करते थे। बाहर से घर में वापस आने पर सबसे पहले दादी जी से मिलते। उनका हालचाल पूछते। किसी चीज की आवश्यकता होने पर तुरन्त उसकी पूर्ति कर देते थे। इसके बाद फिर कहीं घर में और लोगों से मिलते। शाम को कुछ घण्टे वे उनके पास अवश्य बैठते और बातचीत करते।

बच्चों के साथ वे बड़े प्यार से बातें करते थे। उनका व्यवहार बच्चों के साथ ऐसा नम्र तथा प्यारभरा होता कि बच्चे उनसे निःसंकोच अपने मन की बात कह दिया करते।

वे उनकी बात बड़े ध्यान से सुनते थे और तत्व की बात जानकर निःसंकोच उस पर अमल करते। एक दिन की बात है, वे आँगन में बैठकर चार वर्ष के छोटे बच्चे, मेरे पुत्र 'शिशु' से बातें कर रहे थे। शिशु ने सहज भाव से कहा कि 'बाबा यह सामने की दीवार थोड़ी सी ऊँची करवा दीजिये।' पिता जी ने तुरन्त दूसरे दिन दीवार ऊँची करवा दी और कहा कि "बच्चे ने ठीक ही कहा था। देखो, अब बाहर के फालतू दृश्य नहीं दिखाई देंगे।"

पिता जी का ज्येष्ठ पोते के प्रति बहुत हीसला था । उसके सब संस्कार उन्होंने वैदिक रीति से सम्पन्न कराये थे ।

पिता जी के हृदय में नारी जाति के प्रति बहुत आदर था । अम्मा जी (हमारी सासजी) के साथ साथ, उनके विचार बहुओं के प्रति भी बड़े उच्च थे । वे अम्मा जी से अक्सर कहा करते कि घर में बड़ी बहू आयी है । सबसे पहले उसको भोजन कराओ । कभी कभी तो ऐसा होता कि बहुत मना करने पर भी मुझे भोजन करने के लिए विवश होना पड़ता था ।

पिता जी बड़े गंभीर विचार के व्यक्ति थे । घर के बाहर और भीतर सभी जगह शील, शान्ति और सदाचार के हिमायती थे । यही कारण था कि वे कभी किसी ऐसे लोगों को घर में हँसी मजाक करने नहीं देते थे जिससे पारिवारिक मर्यादा एवं शील का खण्डन हो ।

पिता जी के विचार एवं जीवन सिद्धांत अन्य व्यक्तियों से भिन्न प्रकार के थे । वे पक्के आर्य समाजी थे और आर्य समाज के सिद्धान्तों पर अमल करना वे अपना दायित्व समझते थे । वे सदैव दूसरों की भलाई चाहते थे । सबकी उन्नति में अपनी भी उन्नति, तथा सबकी खुशी में अपनी भी खुशी समझते थे । छोटे से छोटे कार्य भी वे स्वयं अपने हाथों से ही करते थे । उनका कहना था कि अपने घर का काम स्वयं करने में कोई बुराई नहीं । घर की सफाई का वे बहुत ध्यान रखते थे । उनका कहना था कि जो कोई भी बाहर से आये, अपने जूते दरवाजे पर ही उतार कर तब भीतर प्रवेश करे । वे स्वयं ऐसा ही करते थे ।

ईश्वर पर उनका अटल विश्वास था । वे आत्मविश्वासी, साहसी, पुरुषार्थी तथा बड़े कर्त्तव्य परायण थे । नित्य प्रति वे स्वाध्याय करते थे ।

घर में अक्सर किसी न किसी विषय पर वाद विवाद छिड़ जाया करता था । किन्तु वे किसी को भी, चाहे छोटा हो या बड़ा, वाद विवाद हो जाने पर कटु वचन नहीं कहते थे जिससे किसी का हृदय दुखित हो । उनके पास जब

हम बैठते तो बहुत अच्छी अच्छी ज्ञान की बातें बताया करते । उनसे कोई मिलता तो अच्छी बातें ही सीखता था ।

पिता जी का हृदय अत्यन्त संवेदनशील तथा सेवा भावना से भरा हुआ था । जब अम्मा जी अस्वस्थ थीं तो वे अपने हाथों से ही उनकी ड्रेसिंग इत्यादि किया करते थे । उनके स्वर्गवास से उन्हें बड़ा आघात पहुँचा था, पर इतने बड़े दुख को भी उन्होंने बड़े धैर्य से सहन किया ।

पिता जी हमारे समक्ष एक आदर्श के रूप में रहे । सत्य एवं संस्कार निष्ठा का मंत्र उन्होंने सभी छोटे बच्चों में फूँका । उनकी प्रबल इच्छा थी कि उनके सभी बच्चे देश के औद्योगिक विकास में भाग लें तथा इस प्रकार अपने द्वारा चलाये हुए काराबार में प्रगति करें । परिवार के हम सभी लोग उनके आदर्शों पर चलने का पूर्ण प्रयास करते हुए आज की प्रगति में हर कदम पर उनका सादर स्मरण करते हैं ।

की म
थे ।
भाइय
छोटे
जीव
जानते
कितन
मिल

समय
बरस
इस

जा
वे अ
पहुँच
से तु
की
पक

जीवन संघर्ष के सेनानी

● धर्म प्रकाश

मेरे पिता, जिन्हें मैं प्यार से 'पिता जी' कहता था, स्नेह और वात्सल्य की मूर्ति थे। उनका सब बच्चों पर समान प्रेम-भाव था। वे गुणों की खान थे। पर भाग्य की विडम्बना देखिए, उनके निरपेक्ष होने के बावजूद हम तीनों भाइयों में उनके गुणों का वितरण हो गया। बड़े भाई को सादगी तथा सरलता, छोटे को खेलकूद प्रतियोगिता की सफलता तथा मिलनसारिता मिली और मुझे जीवन के प्रति बेलगाव अलमस्ती का अंश मिला। वे सभी बच्चों का स्वभाव जानते थे और उसी प्रकार ध्यान रखते थे। हम लोगों के प्रति उनके हृदय में कितना और कैसा प्रेम था, इसका आभास जीवन की दैनिक घटनाओं से मिलता है।

उन्होंने एक बार मुझे कालेज से भीगते हुए आते देख लिया। वे उस समय कुछ भी न बोले किन्तु उसी समय बाजार जाकर बरसाती खरीद लाये। वह बरसाती मेरे पास कई वर्षों तक रही और वर्षा के बचाव के साथ साथ उनकी इस सहृदयता की याद दिलाती रही।

दूसरी घटना थी विदेश जाने की। जब गाड़ी में सामान इत्यादि रखा जा चुका था। विदा लेने के लिए मैं पिता जी को ढूँढ़ने लगा तो पता चला कि वे अस्वस्थता के कारण स्टेशन नहीं आ सके। मुझे इस बात का बड़ा दुख पहुँचा कि बिना पिता जी का आशीर्वाद पाये मुझे विदेश जाना पड़ेगा। मैंने गाड़ी से तुरन्त सामान उतरवाया और सवारी लेकर सीधे घर गया। वहाँ पिता जी की चरण धूल लेकर आशीर्वाद प्राप्त किया फिर स्टेशन आकर दूसरी गाड़ी पकड़ी। शायद उन्होंने मेरी इस भावना को हृदयंगम कर लिया था। माँ के

वियोग का अपार दुख झेलते हुए भी मेरे विदेश से वापस आने की प्रतीक्षा करते रहे । फिर वापस आने तथा मेरी गृहस्थी बसाने के बाद ही पिता जी ने शरीर छोड़ा ।

पिता के रूप में तो उन्होंने हार्दिक प्यार दिया ही, माँ के अभाव की भी पूर्ति उन्होंने की । कोरी भावनाओं के फेर में पिता जी कर्त्तव्य को कभी नहीं भूले । हम लोगों के हृदय में ऐसी धारणाएँ नहीं आने दीं, जिससे हम मार्ग से विचलित हो जावें । वे सदैव इस बात का ध्यान रखते थे कि हम लोगों की संगति कैसी है, खेल कूद का समय कैसे व्यतीत होता है । समय समय पर आकस्मिक रूप से वे इस बात का निरीक्षण भी किया करते थे ।

उन पर मेरे बड़े नाना जी का भी काफी प्रभाव पड़ा था । नाना जी गृहस्थ योगी थे । गृहस्थ जीवन यापन करते हुए भी त्यागी और वैरागी थे । वे दूसरों को दीक्षा दिया करते थे । मेरे एक चाचा जी थे जो कि उनके शिष्य थे । एक बार नाना जी उनके यहां आये थे । वहीं पर पिता जी को उनके दर्शन का सौभाग्य प्राप्त हुआ था । उस समय तक पिता जी का विवाह नहीं हुआ था । उन्हें देख कर पिता जी के हृदय में यह भाव उठा कि यदि नाना जी के परिवार से उनका सम्बन्ध हो तो कितना अच्छा हो । ईश्वर इच्छा से ऐसा ही हुआ । कुछ दिनों के बाद उनकी अपनी भतीजी के विवाह का प्रस्ताव आया, पिता जी के लिए । पिता जी के हर्ष का पारावार न था । वयोकि बिना किसी के समक्ष अपनी इच्छा को अभिव्यक्त किए ही, उन्हें यह मनोनुकूल सम्बन्ध का अवसर प्राप्त हो रहा था । विवाह के बाद उनका नाना जी से आध्यात्मिक सम्बन्ध बढ़ा । उन्हें एक सद्गुरु मिले । उन्होंने नाना जी से योग तथा आसन प्राणायाम आदि की दीक्षा ली । प्रायः उनसे आध्यात्मिक तथा योग, रहस्यवाद पर चर्चाएँ हुआ करती थीं । संध्या पूजा में नाना जी के ध्यान करने पर वे शायद आध्यात्मिक शक्ति द्वारा उन्हें उचित मार्ग का दर्शन कराया करते थे । इस प्रकार नाना जी से उन्हें सद्गुरु के रूप में सदैव आध्यात्मिक प्रेरणाएँ मिलती रहती थीं ।

ML-11-56

1947-1948

[illegible]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥ १ ॥
 ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥ २ ॥
 ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥ ३ ॥
 ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥ ४ ॥
 ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥ ५ ॥
 ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥ ६ ॥
 ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥ ७ ॥
 ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥ ८ ॥
 ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥ ९ ॥
 ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥ १० ॥
 ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥ ११ ॥
 ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥ १२ ॥
 ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥ १३ ॥
 ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥ १४ ॥
 ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥ १५ ॥
 ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥ १६ ॥
 ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥ १७ ॥
 ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥ १८ ॥
 ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥ १९ ॥
 ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥ २० ॥
 ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥ २१ ॥
 ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥ २२ ॥
 ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥ २३ ॥
 ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥ २४ ॥
 ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥ २५ ॥
 ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥ २६ ॥
 ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥ २७ ॥
 ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥ २८ ॥
 ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥ २९ ॥
 ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥ ३० ॥

माता जी का पत्र

विवाह के बाद माँ को पिता जी ने पढ़ना लिखना सिखाया जिससे उन्हें इतना ज्ञान हो गया कि वे साहित्य इत्यादि का अध्ययन कर सकीं। प्रत्येक दोपहर को अपना घर का कार्य समाप्त करके वे अखबार आदि रचि पूर्वक पढ़ा करती थीं। पिता जी और माता जी अपने बीच पत्र व्यवहार में एक 'कोड' लिपि को प्रयोग करते थे। उसकी एक फोटो कापी सामने के पृष्ठ पर दी जाती है :—

मेरी माँ के प्रति उनके कोमल तथा उच्च विचार थे। मेरी माँ को वे अर्द्धांगिनी के अतिरिक्त जीवनसंगिनी, अभिन्न मित्र तथा सद्कार्यों द्वारा लक्ष्य की प्राप्ति में प्रेरणा शक्ति समझते थे। एक बार उद्योग के लिए पिता जी कुछ जमीन खरीदना चाहते थे। परन्तु पैसे का प्रबन्ध नहीं हो पा रहा था। हताश होकर उन्होंने माँ से इसका जिक्र किया। माँ ने कुल संचित किया हुआ रुपया लाकर पिता जी को दिया तब जमीन खरीदी जा सकी। ऐसे अवसर एक बार नहीं, अनेक बार आये। माँ ने सदैव अपना संचित कोष उनको सौंपकर कार्य सिद्ध करने में सहायता दी। सिंहासिनी देवी उनका ही नाम था, जिस पर हमारे पारिवारिक उद्योग का नामकरण हुआ। वे वास्तव में 'सिंहासिनी' देवी थीं। सिद्धिदात्री, कल्याणमयी देवी की प्रतिमूर्ति।

हमारी माँ के प्रति पिता जी का इतना अधिक आत्मिक प्रेम था कि उनके निधन के बाद उनका रोम रोम शोकाकुल हो गया था और जब उनकी चिता के फूल चुनने के लिए हम लोग गये तो हृदय भर कर बोले “फूल बहुत आदर से चुनना।”

...

...

...

निर्माण कार्यों में पिता जी की मान्यता कुछ भिन्न प्रकार की थी। चाहे गृह निर्माण हो या चरित्र निर्माण। उनका दृष्टिकोण बड़ा गम्भीर होता था। उनका कहना था कि भवन में चल रहे ठोस कार्य उसकी आत्मा के समान हैं। आत्मा के न रहने से सुन्दर तथा भव्य शरीर फिर एक ठठरी के समान रह जाता है। सामाजिक या धार्मिक कार्यों में विशेषकर आर्य समाज के

कार्यों में इस बात का अधिक ध्यान होना चाहिए कि रुपये किस मद में खर्च करने से अधिक हित होगा जिससे जाति, समाज एवं राष्ट्र का हित हो। पिता जी इसी बात पर हमेशा ध्यान देते थे।

उन्होंने अपने द्वारा आरम्भ किये हुए आर्य समाज (सीसामऊ-कानपुर) का भवन बहुत सादा बनवाया था। जितना धन दान में आता था, उसे केवल ठोस कार्यों में ही लगाते थे। यही कारण है कि जब उनके पास उस पर विशाल भवन निर्माण की सूचना आयी तो उन्होंने निम्नलिखित पत्र लिखा—

रघुनन्दन प्रसाद

कानपुर

२४-१२-५३

श्रीमान मंत्री जी,

सप्रेम नमस्ते !

मैंने सुना है कि चन्द सभासदों और अधिकारियों ने मिलकर करीब १४ हजार रुपये से समाज हाल बनवाने का संकल्प किया है। सुनकर खुशी भी हुई और दुख भी हुआ। खुशी इसलिए हुई कि समाज की हैसियत बढ़ जावेगी और जो लोग वहाँ रहते हैं और बैठते हैं, उन्हें आराम मिलेगा। दुख इस बात का है कि देश में जब अमेरिकन पादरी हजारों की तादाद में आये हैं और शूद्रों, अछूतों, जंगली जातियों के बीच अपने धर्म का प्रचार कर रहे हैं, जिनसे हमारे धर्म, राजनीति और सभ्यता को बड़ा खतरा है। इस आपत काल में धन की बड़ी आवश्यकता है। प्रचारकों की बड़ी जरूरत है। समाज के पास धन नहीं। इतने रुपये से ५ उपदेशक ५ वर्ष तक लगातार प्रचार कार्य कर सकते हैं और जाति तथा धर्म की रक्षा कर सकते हैं। इसी में कल्याण है। पाकिस्तान में हम बहुत कीमती कीमती समाज भवन छोड़ आये हैं; जोकि जाति के दुश्मनों के कब्जे में हैं। इसलिए मेरा निवेदन यह है कि धन को उचित कार्य के लिए समयानुसार व्यय करें। मैंने जो कुछ सुझाव दिया है वह एक

समाज हितैषी और पुराने सेवक के नाते ही । मैं समाज की उन्नति में बाधक नहीं बनना चाहता हूँ । आशा है कि हमारे सुझाव पर आप लोग विचार करेंगे और किसी अच्छे नतीजे पर पहुँचेंगे ।

मैं हूँ एक पुराना समाजसेवक
रघुनन्दन प्रसाद
इंजीनियर

“हवेलियाँ बहुत बनीं और बनती जायेंगी ।
मुल्क की बिगड़ी हवेली नहीं बन पायेगी ।
इसलिए चेतो हिन्दू भाइयो, अभी से तुम,
अगर देश टुकड़ों में बँटा, आफत आयेगी ।
अफसोस है कि हम दयानन्द को भूल बैठे,
न जाने कब तुम्हें याद उनकी आयेगी ।
गरीबी में ही ब्रह्मानन्द प्राप्त होता है,
झोपड़ी मुबारक मुझको, गुजर हो जायगी ।
मगर यह जाहिर है इस दुनिया में रघुनन्दन,
गरीबों की आवाज न, यहाँ सुनी जायगी ।”



वे समाज की रुढ़ियों तथा उनकी समस्याओं का समाधान संकुचित मन से न देकर खुले दिमाग से देते थे। पास के मुहल्ले की एक युवती अपने मनोवांछित वर से विवाह करना चाहती थी। परन्तु उसके घरवाले उस विवाह के सख्त खिलाफ थे। युवती ने निराश होकर विष खाकर प्राण दे देने का निश्चय किया। पिता जी को जब पता चला तो उसके पास गये, उसको साँत्वना दी। फिर उसके घरवालों को समझा बुझाकर उस युवती की शादी करा दी।

इसी प्रकार, एक दूसरी घटना कानपुर के एक सम्पन्न परिवार की है। चमड़े का व्यवसाय करने के कारण वह परिवार जाति से बहिष्कृत कर दिया गया था। इस परिवार की एक कन्या के विवाह के लिए एक गरीब सजातीय, उच्च शिक्षा प्राप्त वर के सम्बन्ध की बात तय की गयी और जब बरात दरवाजे पर आ गयी तो जाति के अन्य लोग उनका विरोध करके शादी में अड़ंगा लगाने लगे। पिता जी वहाँ मौजूद थे उन्होंने जाति वालों को ललकारा फिर समझा बुझाकर उन्हीं लोगों के सहयोग से हंसी खुशी व्याह सम्पन्न कराया।

पिता जी ने नौकरी के कार्यकाल में कभी भी पद का दुरुपयोग नहीं किया। एक बार एक कान्ट्रेक्टर उन्हें सुन्दर पत्थर की बनी मेज उपहार में देने आया। उसका प्रेम भाव देखकर उन्होंने उसको निराश नहीं किया वरन् उचित मूल्य देकर ही उस मेज को घर के भीतर आने दिया। इसी प्रकार दूसरे महायुद्ध के दौरान उनके पास अनेक उद्योगपति पैसे लेकर रसायन विधि (Know How) जानने के लिए आये। किन्तु पैसे के लोभ में उन्होंने ईमानदारी कभी नहीं छोड़ी। मालिकों के प्रति हमेशा वफादार रहे।

पिता जी को नौकरी से अवकाश ग्रहण करने के पश्चात् एक के बाद एक अनेक प्रकार की कठिनाइयाँ आती रहीं। उन दिनों ऐसा लगता था कि मुसीबतों का पहाड़ टूट पड़ा हो किन्तु वे कभी घबराये नहीं और साहस के साथ संघर्ष करते रहे। उद्योग में घाटा तथा अन्य प्रकार की आर्थिक हानि के

बावजूद पैसेके विषय में उन्होंने मनुष्यता को कभी नहीं त्यागा। एक सिन्धी व्यापारी ने उनसे एक मशीन खरीदी। सौदा अघूरा ही हुआ था कि उसको अपने व्यापार में घाटा हो गया। पिता जी को आर्थिक तंगी थी किन्तु बजाय इसके कि वे अग्रिम लिया हुआ रुपया जव्त कर लें, उन्होंने उसका रुपया वापस कर दिया और मशीन के दिये गये पुर्जों को भी वापस ले लिया।

जीवन की कठिनाइयों के प्रति उनका अपना ही दृष्टिकोण था। जिसकी पुष्टि उन्हीं की रचित इस अंग्रेजी कविता से होती है—

Life is like a stream of water.
flowing in the river.

Joys and happiness are like bubbles,
stand for a moment and disappear.

Storm of troubles comes in wave,
Boldly, willingly and patiently bear,
the duty of man is salvation,
Dies in efforts, never fear.

जीवन में संघर्ष का बहुत बड़ा महत्व है। वे उन दिनों जहाज और उसके कप्तान की मिसाल देकर समझाया करते थे। कहते थे कि सागर में तूफान आया देखकर जहाज का कप्तान आराम नहीं करता। वह स्वयं कन्ट्रोल केबिन में जाकर बड़े धैर्य और साहस के साथ उसका मुकाबला करता है। हाथ में दूरबीन लेकर तूफान तथा मार्ग में आने वाले अवरोधों का निरीक्षण करता है। यदि खतरा देखता है तो जहाज का मार्ग बदल देता है। कप्तान कन्ट्रोल केबिन तभी छोड़ता है, जब उसे सन्तोष हो जाता है कि सागर शान्त हो गया है, खतरा टल गया है अथवा तट दिखाई पड़ने लगा है। उनके संघर्षमय जीवन के अंतिम वर्ष कुछ इसी प्रकार बीते। सागर शान्त हो गया था, तट दिखाई पड़ने लगा था। तभी इस संसार रूपी केबिन से पूज्य पिता जी ने चिरविश्राम के लिए अवकाश लिया। उनका धैर्य तथा साहस बंधाने वाला

आशीर्वाद आज भी हमारे कानों में गूँजता है और आगे बढ़ने की प्रेरणाएँ देता है—

Look ahead oh, man,
your future is bright,
Fortunes are made,
by doing things right.

... ..

No man's efforts
ever seen unpaid.

Sahil
nana
of hi
to at
Shri
stay
him
anoth
first i
pract
thoug
daug
held
visit
ment
the p
mind
eleve
found
perso
and a

The Magnetic Personality

● *Shri Krishna Rai.*

I used to hear lot of praise about Engineer Sahib in my maternal grandfather's house. My nana late shri Mahraj Bahadur was a great admirer of him. I had a closer glimpse of him when he came to attend the marriage ceremony of my elder brother Shri Shyam Krishna Rai. During three days of his stay from February 27 to March 1, 1947, I heard him chatting with my father late shri Amrit Rai, another saintly soul and other elderly relatives. The first impression that I got was that he is a learned practical man with a religious bent of mind. I never thought that one day, I will be married to his daughter. He became so attached to my people, who held him in high esteem, that he made it a point to visit our home on ceremonial occasions. The attachment was the main factor which made me to accept the proposal to marry his daughter though I had a mind to marry only after I was fixed up. During my eleven years relationship, at the time of his death, I found that he was a super man with a magnetic personality. He bewitched every one with his charm and always tried to infuse yougmen with new ideas.

He took a special pride in converting raw and rustic village folks into useful artisans.

Dignity of labour, hard and honest work was his cherished possession. He was a 'Purusharthi' in real sense. He took a special pride in upholding Indian Culture and on that score he never compromised with his foreign bosses though at times it meant a monetary loss to him. Realising that the service should not be the mission of his life, he started his own industry under the inspiration of his devoted wife. He imbibed in his workers and eldest son, Shri Om Prakash, the spirit of hard and honest work which ultimately brought laurels and glorious success to the industry. The ideal relationship of the employer and the employee can be seen there. He felt a real pleasure in helping the poor relatives and friends. At times, he gave them money though by sacrificing the comforts of a good life to himself and his family. He would treat them as the members of his family and I would never forget the care and personal attention he gave to my servant Samai when he got small Pox at Kanpur.

He was a man of words and courage. From what I saw on 23-6-1958 I can say that he could sacrifice every thing including, his life than to break his words. Pran Jaye Par Bachan Na Jai' was his

and
was
y' in
ding
ever
at
sing
life,
tion
and
and
and
deal
can
the
hem
good
hem
ever
e to
pur.
rom
ould
reak
his

motto. As a result of that he performed the marriage of his second son, Shri Dharm Prakash just three days after the death of his loving and devoted wife. I was posted at Kanpur as city Munsif from 1958 to 1961 and I would praise that he never talked to me about any case though, as I understand many people used to go to him to shed crocodile tears to win his sympathy. He came to see me a day earlier to his death but unfortunately I was not at home. The next day, i.e. 16-8-1959, I got the sudden news of his death that he was no more. I recorded the following note in my diary of that day :-

"Father-in-law died at 5.30 P. M. of heart failure. Could not see him alive. What a tragedy' May God Almighty grant him eternal peace."

He really died a saints death in harness.

●

85

As a result of this he performed the marriage of his second son, Shri. Bha. Prakash, just before the death of his father and departed with him to the other world. He was posted at Kanpur as a District Officer from 1938 to 1941 and I would stress that he never failed to do about any case though as a District Officer he was used to go to him to find out the cause of his death. It came to me one day when he was in Kanpur. I was not in Kanpur at that time but I was not in Kanpur. The next day, i.e. 18-3-1941 I got the sad news of his death that he was in Kanpur. I recorded the following note in my diary of that day :-

"Father-in-law died on 18-3-1941 at 2.30 P.M. of heart failure. Could not see him alive. What a tragedy. May God Almighty grant him eternal peace." He really died a saint's death in Kanpur.



स्व० रघुनन्दन प्रसाद

विचार

विचार क्रम

१. पथ भ्रम क्यों ?
२. सुस्ती गरीबी की मां है
३. हमको निराश न होना चाहिए
४. हिन्दू अपने धर्म से गिरा जा रहा है
५. भारतीय धर्म पर आघात
६. योगासन और स्वास्थ्य
७. राजनैतिक हलचल
८. ऋषि मुनि सन्तों का उपदेश
९. पाकिस्तान
१०. महाशोक ! हा बापू ! महाशोक !
११. ब्राह्मण देवता सावधान

पथ भ्रम क्यों ?

हमारा झूठा संकल्प हमें अपने लक्ष्य से क्यों गिरा देता है ? इसका क्या कारण है ? इस पर विचार करना है ।

सर्व प्रथम यह विचार करना है कि संकल्प क्या है, कहाँ से उत्पन्न होता है ?

हृदय एक प्रकार से बिजली का केन्द्र है । वहीं से लहरें उठा करती हैं जो कई दिशाओं में जाकर टकराया करती हैं । फिर वापस आती हैं । जब कभी संकल्प-द्वय की लहरें उठती हैं तो वे जहाँ के लिए छोड़ी जाती हैं या जिसके लिए विचार किया जाता है; लहरें वहीं ठहर जाती हैं और अपना असर करती हैं । इसका फल उत्तम मिलता है और आत्मा उसे स्वीकारती है । यदि यह संकल्प-द्वय नहीं है तो लहर टकरा कर पुनः केन्द्र पर आ जाती है और एक प्रकार से हृदय पर छाप कर देती है या चिन्ह बना देती है, जो आत्मा को व्याकुल कर देती है और मन उदास हो जाता है । इससे जीव दुखी हो जाता है और इच्छाशक्ति दुर्बल हो जाती है । ऐसा क्यों होता है ? इसके भी कई कारण हैं—

१. बिना विचार किये कोई काम करना ।
२. उस काम का अनुभव नहीं होना ।
३. किसी भद्र अनुभवी पुरुष से अनुमति नहीं लेना ।
४. निम्नलिखित कहावत का पालन न करना—
बिना विचारे जो करे, सो पाछे पछताय ।
काम बिगाड़े आपनो, जग में होत हूँसाय ॥

इसलिए उत्तम काम विचार कर करना चाहिए और निकृष्ट कर्म करने का विचार ही नहीं करना चाहिए। तभी जीवन सफल होता है। नहीं तो जीवन यों ही बीत जाता है, दिन-दुनिया किसी के काम नहीं आता।

इसी संदर्भ में मुझे एक कहानी याद आती है जो मुझे अनुभव से प्राप्त हुई है। कहानी इस प्रकार है—

एक गरीब परिवार में एक बालक था जिसे माता पिता का सहारा नहीं था। वह एक गाँव में रहता था। बचपन में माँ बाप के मर जाने से परिवार के अन्य लोग उसके साथ लापरवाही का व्यवहार करते थे। जब वह बड़ा हुआ तो पढ़ा लिखा नहीं होने के कारण उसे कोई काम धन्धा नहीं मिला।

वह मैला कुचैला कपड़ा पहने रहता और इधर उधर घूमता रहता था। जहाँ कहीं उसे कुछ खाने को मिलता, खा लेता था। उसे कुछ सूझ नहीं रहा था कि वह क्या करे, कहाँ जाये? न तो वह किसी खराब संगत में जाता और न किसी साधु सन्यासी के साथ ही बैठता। इस तरह वह अपना जीवन व्यतीत कर रहा था। उसके जीवन में न कोई झलक थी और न कोई शक्ति।

जब वह बारह वर्ष का हो गया तो गाँव के अन्य लड़के उसकी अलहड़ता पर हँसते और उसे चिढ़ाया करते थे। किन्तु वह किसी को कुछ नहीं कहता था। न किसी की बात का बुरा मानता, न दुखी होता था। उसके चेहरे पर उदासी कभी नहीं देखी गयी।

एक दिन किसी विरादरी के यहाँ भोज में वह भी गया था। जब सभी लोग हाथ पैर धोकर पत्तल पर बैठे और खाना परोसा गया तो नाना प्रकार के भोजन को देखकर उसके मुँह में पानी भर आया। वह बार बार रोटी का टुकड़ा उठाता और संकोचवश न मुँह में डालता और न पत्तल पर ही रखता। वह लालच में पड़ गया था। उसकी बगल में बैठने वाले ने कहा, “मूर्ख, तुझे इतना नहीं मालूम कि जब घर के मालिक जीमने कहें और यह कहा जाय कि ‘लक्ष्मी नारायण, आ गये, भोजन प्रारम्भ करें,’ तब कौर मुँह में डालना चाहिए। लड़का इस पर भी हँसता रहा। उस व्यक्ति को उस पर क्रोध आ

गया। उसने लड़के के गाल पर एक तमाचा मारा। इतने में घर के मालिक ने वहाँ आकर भोजन प्रारम्भ करने का संकेत दिया। सब लोग भोजन करने लगे पर लड़का चुपचाप बैठा रहा। वह न तो भोजन करता था और न कुछ कहता ही था। विचारों में खो गया था, मानों वह सो रहा हो।

सब लोग भोजन करके उठ गये परन्तु वह युवक पूर्ववत् बैठा रहा। जब जूठे पत्तलों को उठाने के लिए नौकर दौड़े तो वह युवक उठ खड़ा हुआ और इधर उधर देखने लगा। उसने देखा कि सड़क पर कुत्ते, झाड़ू देने वाले मेहतर और इसी श्रेणी के बच्चे जूठे पत्तलों के ढेर पर टूटे पड़े रहे हैं। एक तरफ रोटियों के टुकड़े पर कुत्ते झपट रहे हैं तो दूसरी ओर उसे छीनने के लिए मेहतर लोग लपक रहे हैं। इस दृश्य को देखकर उस युवक के मन में विवेक जागा और उसे आत्मगौरव का भान हुआ। मन ही मन उसने सोचा कि पेट के कारण मनुष्य और जानवर में कोई भेद नहीं रहा, ऐसा क्यों? इसके कारण को जानने के लिए उसके मन में कुछ प्रश्न उठ खड़े हुए। वह वहीं रोने लगा। मेहमान भोजन समाप्त कर पान, इलायची, सिगरेट लेकर चलते बने, पर वह युवक रोता रहा। उसको रोता देखकर घरवाले वहाँ आ गये और उस युवक से रोने का कारण पूछने लगे। युवक ने कहा, “रोटी के लिए मनुष्य और जानवर एक हो गये। दोनों आपस में लड़ रहे हैं। यही देखकर मैं रो रहा हूँ मनुष्य भरपेट भोजन नहीं पाता। जैसा जो खाना चाहता है, उसे नहीं मिलता, इसीलिए वह असंतुष्ट रहता है। समाज और ईश्वर के नियमों को भंग करने के कारण ही वह पाप और अपराध के कैदखाने में बन्दी बना लिया जाता है। सदा शोक और चिन्ता से घुलता रहता है। दुर्भाग्य की बात है कि वह इस पर भी नहीं समझता है।”

ये बातें वह आत्म प्रेरणा से बोल रहा था क्योंकि उसके हृदय की कुंजी खुल चुकी थी। अब वह अन्धकार से प्रकाश की ओर आ रहा था। उस पर से अज्ञान का पर्दा उठ चुका था। अब वह विज्ञान का आलोक अनुभव कर रहा था। यह एक बड़ी आश्चर्यजनक घटना थी। लोग उसके कथन को ध्यान

से सुन रहे थे और यह सोच रहे थे कि उस युवक को इतना ज्ञान कैसे हो गया ? न तो वह पढ़ा लिखा है और न किसी अच्छी संगति में रहा है । फिर यकायक उसकी बुद्धि कैसे खुल गयी ?

युवक अब सबकी दृष्टि में उत्तम मनुष्य बन गया । उसके पास रोज रोज हर प्रकार के लोग आने लगे । उसके श्रीमुख से सभी लोग सीधी सीधी काम की बातें सुनते और परोपकार के अनेक कार्य करने की प्रेरणा ग्रहण करते । वह युवक न कुछ उपदेश देता, न लेक्चर झाड़ता, बल्कि विल्कुल सरल भाषा में लोगों से आग्रह करता था और स्वयं करके दिखलाता था । वह गरीबों की बातें सुनता और हर प्रकार से उनकी मदद करता । अमीरों से मिलकर उनकी सहायता करा देता । रोगियों की सेवा, आश्रमों में भोजन, सरकारी चिकित्सालयों में रोगियों की भर्ती, लावारिश लाशों का अंतिम संस्कार आदि कई कार्यों को स्वयं करता । मेला और पर्व त्यौहार के समय जहाँ भीड़भाड़ होती वहाँ स्वयं सेवकों की टोलियाँ लेकर जाता और भूले भटके औरतों बच्चों की सहायता करता, मार्ग बतलाता, पीने के पानी की व्यवस्था करता । इसी तरह के कई शुभ कार्यों में वह लगा रहता । लोगों को अपने साथ लेता । सभी उसके साथ आने को तैयार रहते, उसकी इज्जत करते । वह आनन्द से जीवन गुजारने लगा । उसके कारण बड़े बड़े आश्रम और सेवा सदन चलने लगे ।

युवक में क्या विशेषताएँ थीं, जिसके कारण वह समाज में आदर का पात्र समझा गया ?

१. लड़के का सरल स्वभाव का होना ।
२. वह किसी की संगति में पड़कर बिगड़ा न था ।
३. एक बार ठेस लगने पर ही वह चेत गया और अपनी आत्मा की आवाज को मानता रहा ।
४. सच्चे, सरल स्वभाव के कारण वह सबका प्यारा था तथा लोग उसके कथन का आदर करने लगे ।

५. वह भाषण नहीं देता था । दो चार बातें कह देता था और स्वयं उस मार्ग पर चल पड़ता ।
६. उसके हृदय से भावनाओं की जो किरणें फूटती थीं और प्रेम की लहरें लोगों के हृदय ले टकराती थीं, उससे सच्ची अनुभूति जाग्रत होती थी । यही कारण था कि वह एक सच्चा मनुष्य बन गया । उसने सदा अपनी आत्मा के आदेश का पालन किया । कभी अपने मार्ग से नहीं डिगा । खुद उठा और दूसरों को ऊपर उठाया ।

—अगस्त १९५७

नोट :— ११-३-५८

संसार में आकर खुद उठो और दूसरों को उठाओ । प्रभु तुम्हारे पास है । उनसे सहायता लो, वे मदद करेंगे । हाथ बढ़ाओ, वे तुम्हें पकड़ लेंगे, ऊपर उठा लेंगे । प्रेम का व्यवहार कर्त्तव्य की कुंजी है, सफलता का खजाना है । वही दिलाते हैं, देते हैं । विज्ञान का खजाना तुम्हारे पास है । खोज करो । यही योग है, जिसे पाकर परम आनन्द को प्राप्त करोगे ।

सुस्ती गरीबी की माँ है

जो लोग यह चाहते हैं कि सुखमय जीवन व्यतीत करें, वे कुछ न कुछ सुख की सामग्री इकट्ठा करने में लगे रहते हैं और उसमें कुछ सफलता अवश्य मिलती है।

कुछ लोग ऐसे भी होते हैं जिनके देश में खेतीबारी नहीं होती, वे कंधे पर बन्दूक डालकर प्रातःकाल से सायंकाल तक जंगलों में शिकार के लिए घूमा करते हैं और दिन भर के थके माँदे लोग घर आकर मारे गये शिकार को भून कर खाते हैं। फिर आराम से सो जाते हैं। यह उनके जीवन निर्वाह का धन्धा होता है। अपना पेट भरने के लिए वे जान की भी बाजी लगा देते हैं।

मनुष्य अनेक प्रकार के साधनों में लगे रहते हैं, जिनसे उनका जीवन निर्वाह हो सके। यूरोप के लोगों की जो प्रगति विज्ञान से हुई है, सिर्फ इसलिए कि वे नये नये आविष्कार करके नई नई मशीनें बनाकर दूसरे देशों से खाने पीने और आराम की चीजें खरीद करें और आराम से जिन्दगी बितावें। उनके धर्म में जो रोजाना प्रार्थना होती है, वे यही माँगते हैं —“हे ईश्वर, आज की रोटी हमको दो।”

उन्होंने संसार की रोटी छीन कर इतना बल बढ़ा लिया कि अनेक उपनिवेश बसा लिये और सम्पूर्ण संसार में अपना साम्राज्य बना लिया। यह सब कैसे हुआ ? इसका रहस्य सिर्फ इतना है कि उन लोगों ने सुस्ती और काहिली को अपने करीब नहीं आने दिया। उनके देश के धनियों ने आविष्कार में अपना धन लगाया। अरबों रुपया कमाकर मिशनरियों द्वारा अपने धर्म का प्रचार करवाया। ये मिशनरियाँ हर देश में सेवा कार्य कर रही हैं।

हमारे देश के अमीर आदमी विलासिता में रत रह कर जीवन सुस्ती और काहिली में गुजारते हैं। राजाओं एवं नवाबों की भी यही हालत है। इसी तरह के जो गरीब हैं, वे भी अपनी काहिली की वजह से कुछ नहीं कर सकते।

अजगर करे न चाकरी, पंछी करें न काम।

दास मलूका कह गये, सब के दाता राम ॥

बहुत से लोग इसी भरोसे रह कर भाग्य पर जीते हैं और अपनी उन्नति नहीं करते। बार बार किसी कार्य में असफल हो जाने से उत्साह छोड़ देते हैं। इसीलिए उन्नति नहीं कर पाते। जबकि यूरोप के लोग बार बार असफल होने पर भी जान की बाजी लगा कर सफलता प्राप्त कर लेते हैं। आकाश में उड़ना, जल के भीतर महीनों यात्रा करना आदि कई कठिन कार्य वे करते हैं। अब वे लोग ऐसे यंत्र बनाने में लगे हैं जिससे अगले १५ वर्षों में वे लोग चाँद पर पहुँच जायँगे। यह सब पुरुषार्थ का खेल है। सुस्ती और काहिली गरीबी की माँ है। देख लीजिये काहिल लोगों की दशा।

स्ती
इसी
ते ।

हमको निराश न होना चाहिए

पनी
छोड़
वार
हैं ।
कार्य
में
और

आशा जीवन है और निराशा मीत । कहा जाता है कि जब तक सांस है, तब तक आस है । जिनके जीव है, वे सब अपने जीवन की रक्षा के लिए संघर्ष में लगे रहते हैं । प्रातः पाँच बजे ही मिलों के भोंपू बजने लगते हैं । मिलों में काम करने वाले सचेत होकर काम पर चले जाते हैं । थोड़ी सी देर होने पर या तो उनका वेतन कट जाता है या अफसरों की डांट फटकार मिलती है । गाँव में रहने वाले भी बैलों को खिलाने पिलाने के लिए, खेतों में काम करने के लिए प्रातः तारों को देख कर उठ खड़े होते हैं और बैलों को तैयार कर चल देते हैं । स्कूली लड़के भी प्रातः उठते हैं और शौचादि से निवृत्त होकर पढ़ने के लिए बैठ जाते हैं । घर की स्त्रियाँ भी प्रातःकाल उठ कर घर के काम धन्धों में लग जाती है । हर प्राणी का जीवन अपने समय को अधिक से अधिक उपयोगी बनाने में चिन्तित रहता है । चाहे उसे जीवन में सफलता मिले या नहीं । देखा जाता है कि बहुत से लोग किसी कार्य में सफलता नहीं मिलने से उसे छोड़ देते हैं फिर भय में पडकर कुछ नहीं कर पाते । लेकिन बहुत से ऐसे भी लोग हैं जो सारी जिन्दगी सफलता प्राप्ति के लिए प्रयत्न करते रहते हैं और ऐसे लोगों को बाद में सफलता भी मिलती है ।

कीड़ों को देखो, अनेक बार दीवार पर चढ़ते हैं और गिर पड़ते हैं । फिर चढ़ते हैं और फिर गिर जाते हैं । किन्तु अन्त में सफलता मिलती है । साहसी इसी घटना को देख कर अपने साहस को नहीं खोते हैं । बाह्य से आने वाले मुसलमान जब अनेक बार चढ़ाई करने पर भी भारत के वीर राजाओं से हार कर भागे और जंगलों में छिप गये, मगर हमेशा इसी में लग्नशील रहे कि हिन्दुओं को कैसे जीतकर उन पर अपने धर्म को लाद दें ।

एक दिन मुहम्मद गोरी टहल रहा था । वह इसी विचार में मगन था कि उसने एक कीड़े के ऊँचाई पर बार बार चढ़ने का प्रयत्न करते देखा । कई

बार गिरने के बावजूद वह कीड़ा अन्त में लक्ष्य तक पहुँच ही गया ! इस घटना को देख कर उसके मन में भी यह भावना उठी कि उसे भी निराशा नहीं होना चाहिए । फलतः चौदह बार हारने पर भी अपनी नयी तरकीब से हमला बोल दिया और तीनों दिशाओं से मार काट करता हुआ विजयी हुआ । इसी प्रकार कई आविष्कारकों ने कई बार अपने यत्न में असफल रहने पर भी साहस नहीं छोड़ा और अंत में कामयाबी हासिल की । रेलगाड़ी, मोटरें, हवाई जहाज आदि सभी यन्त्र इसी प्रकार के प्रयत्न से प्राप्त हुए हैं । कई बार दुर्घटनाएं हो जाती हैं । फिर भी लोग घबड़ाते नहीं हैं । उसके कारण की खोज करते हैं और उसे सुधारते हैं ।

साहसी व्यक्ति अनहोनी को भी होनी करके दिखला देते हैं । बड़े बड़े पुल, बाँध और पहाड़ों को खोदकर बनायी गयी सुरंग, सभी साहसी लोगों के प्रयत्नों के फल हैं । बड़ी बड़ी अट्टालिकाएं बनाकर उसमें बिजली की रोशनी की जगमगाहट और ऊपर जाने के लिए लिफ्ट लगा कर अपने विज्ञान का परिचय दिया । ये सभी चमत्कार साहस के हैं । साहस के बल पर ही चन्द्र लोक की यात्रा संभव हो रही है । बड़े बड़े साहसी व्यक्तियों की जीवनी पढ़ने से पता लगता है कि उनकी दिनचर्या बड़ी सुन्दर रहती थी । उन्हें अपने ऊपर आत्मविश्वास और ईश्वर विश्वास का भरोसा होता था । कहावत है कि "परमात्मा उसी को मदद करता है, जो खुद अपनी मदद करता है ।" किसी ने यह भी कहा है "असफलता ही सफलता की जननी है ।" बार बार असफल रहने वाले व्यक्ति यदि उसी काम में लगे रहते हैं, जिसमें असफल होते हैं, तो अंत में सफलता अवश्य मिलती है ।

—(जनवरी १९५८)

हिन्दू अपने धर्म से गिरा जा रहा है

हिन्दू धर्म त्याग, वैराग्य का उपदेश देता है; पर अपने देवताओं को स्वर्ण आभूषण और भड़कीले वस्त्र पहना कर बड़े ठाठ से हिन्दू लोग भजन करते हैं। हर हिन्दू यह सोचता है कि धन चाहे जैसे हो, पैदा करो। चाहे कचहरी या दूसरे दफ्तरों में काम करने वाले हों, चाहे सेठ या साहूकार हों, चाहे घरेलू काम धन्धों में लगे हों, अपने वेतन या मुनाफे से अधिक कमाने की चिन्ता में रहते हैं। घी में मिलावट, दूध में मिलावट, यानेकि जिसको चाहें नकली को असली बताकर धन कमाते हैं। ब्लैक करने में ये शमांते नहीं हैं। होटलों की हालत देखो, कितनी दुर्दशा को प्राप्त हैं। शादी-विवाह में दहेज लेने में हिचकिचाते नहीं हैं। चाहे लड़की वाले बर्बाद हो जायँ, उन्हें दावतों, बाजे गाजे, आतिशवाजी आदि में धन बर्बाद करने में थोड़ी भी हिचकिचाहट नहीं होती है।

दिन पर दिन हिन्दू जाति का पतन क्यों हो रहा है, इस पर विचार करना है। कहावत है—“मर्ज बढ़ता गया, ज्यों ज्यों दवा की।” डाक्टर या वैद्य वही अनुभवी है जो ठीक रोग का निदान कर सके। धर्म तीन तरह के होते हैं, स्वार्थी, निःस्वार्थी और परमार्थी। प्रस्तुत लेख में इन्हीं तीनों पर विचार करना है; जिस पर आत्मदर्शी पुरुष मनन करेंगे और परमात्मा से प्रार्थना करेंगे। क्योंकि बिना प्रभु की कृपा के यह संसार सुधर नहीं सकता। बड़े बड़े महात्मा, अवतार, साधु, औलिया, पैगम्बर, सबों ने सुधार करने की कोशिश की, पर दुनिया टेढ़ी-टेढ़ी ही बनी रही। कुदरत का उसूल है कि वह सब चीजों को संतुलित रख कर नचा रही है। सुधारकों को इस पर ध्यान देना है।

१. स्वार्थी—धर्म के ये ठेकेदार अपने स्वार्थवश नाम और धन कमाने के लिए ढोंग रचकर जनता को ठगते हैं। इनके जाल में फँस कर मनुष्य इहलोक और परलोक को अन्धकारमय बना लेते हैं। न दीन के रहते हैं और

न दुनिया के । ऐसे नकली गुरु साधु भेष में सबको गुमराह करते हैं । हलुआ पूड़ी खाते हैं और दूसरों को भोज देते हैं । पूजित बनते हैं । ऐसे लोग आप तो नरक में जाते ही हैं । चेलों को भी नरक में ढकेलते हैं ।

२. निःस्वार्थी—जो अपना कर्त्तव्य समझ कर लोगों को उपदेश देने और पाप से बचने के लिए उपाय बतलाते फिरते हैं, देश विदेश में प्रचार करते फिरते हैं । न उनको धन का लालच होता है और न मान अपमान का ही विचार ।

३. परमार्थी—परमार्थी पुरुष वे हैं तो परमात्मा के दर्शन कराने की युक्ति योग साधन द्वारा बतलाते हैं । ऐसे गुरु बड़े भाग्य से मिलते हैं । ऐसे महात्मा जीवन भर में किसी को मिलते हैं या नहीं । ऐसे महात्मा आत्म दर्शन कराते हैं और अपनी आत्मा से सम्बन्ध स्थापित करके अपने शिष्यों के उत्थान के लिए प्रयत्न करते हैं । इसलिए सच्चे गुरु की तलाश करो । न मिलने पर हृदय से परमात्मा की प्रार्थना करो । सतगुरु अपने अंदर मौजूद हैं । स्वयं बाहर आकर दर्शन देंगे । बिना प्रभु की कृपा के आगे बढ़ना संभव नहीं है । किन्तु बहुत अफसोस की बात है कि लोग धर्म के प्रति गुमराह हो रहे हैं । कोई मथुरा, कोई काशी, कोई जगन्नाथ, कोई द्वारिका, कोई रामेश्वरम्, परमात्मा की तलाश में जाते हैं । इस तरह देश भ्रमण तो हो जाता है । किन्तु आत्म दर्शन नहीं होता है । अपने देवताओं को सोने चांदी के आभूषण धारण कराते हैं, मुकुट, मणिमाला, सुन्दर वस्त्र पहनाते हैं । वे यही समझते हैं कि धन कमाकर सुन्दर आभूषणों से देवताओं को सुसज्जित करना ही धर्म है । इसलिए किसी भी तरह धनार्जन ही इन हिन्दू व्यापारियों का धर्म हो जाता है ।

आजकल अनेक उच्च कुल वाले ब्राह्मण भी चमड़े का व्यापार करते हैं और हजारों लाखों गायों की हत्या के लिए प्रोत्साहित करते हैं । हिन्दू गऊमाता की जै बोलते हैं किन्तु उनके घर में चमड़े की बनी चीजें रहती हैं । देवियों के पैर की चप्पलें, सूटकेश, अटैची, चमड़े का फीता आदि की काफी खपत है । ये हिन्दू गऊ को माता कह कर अपने को धोखा देते हैं । चमड़े के ही नहीं, चरबी

और हड्डी के व्यापारी भी हिन्दू हैं। इस तरह से धन कमा कर ये क्या कर रहे हैं ? ऐसे धन को दान में पाकर जो वस्तु खरीदी जाती है, या बनायी जाती है, वह नष्ट हो जाती है।

इस हालत में चरित्र निर्माण कैसे हो ? इस पर विचार करना है। जब मनुष्य मनुष्य बनने की चेष्टा करेगा तभी चरित्र निर्माण हो सकता है। यह बिना धर्म के नहीं हो सकता। धर्म क्या चीज है ? वह आत्मा का भोजन है। आत्मा कहीं से खरीदी जाने वाली वस्तु नहीं है और न कहीं गड़े हुए धन की तरह ही पायी जाती है। धर्म को आत्मा धारण करती है। जब तुम परमात्मा के बनाये नियम और मनुष्य के बनाये गये विधान का पालन करोगे तभी अच्छे नागरिक और प्रभु के प्रेमी बन सकते हो। यदि दोनों नियमों का उल्लंघन करोगे तो दो तरह के कारागार में भेज दिये जाओगे। इसलिए दोनों लोकों के, एक तो इसी संसार में बन्दी बनाये जाओगे, दूसरे प्रभु के कारावास चौरासी लाख योनियों में भटकने के लिये धकेल दिये जाओगे। अच्छे नागरिक बनो। धर्म का पालन करो। इससे लोक परलोक दोनों उत्तम बनेगा। अधर्म की कमाई कभी काम नहीं आयेगी। धर्म की कमाई ही साथ देती है। धर्म ऊपर की ओर खींचता है और अधर्म नीचे की ओर घसीटती है। बीच का आदमी संसार के इसी चक्र में नाचता रहता है। इसलिए अपनी आत्मा में परमात्मा का दर्शन करो।

जिसका जीवन जितना धार्मिक होगा, प्रभु का वह उतना ही प्यारा होगा। दुनिया में सुख शान्ति फैलेगी। नीचे गिरने से अधर्म का विकास होगा। जिससे दुख ही दुख देखने को मिलेगा। सुख दुख दोनों से बचने का उपाय कि योग द्वारा इस मरने जीने के बन्धन से किसी तरह छुटकारा प्राप्त करें। जिस केन्द्र से हम आये हैं, वहीं जाने की चेष्टा करें। जब प्रभु की दया हो जाती है तो सारी मुश्किलें आसान हो जाती हैं। आओ, सभी मिलकर प्रभु की प्रार्थना करें।

ईश्वर शरणम् गच्छामि,

धर्मम् शरणम् गच्छामि,

संघम् शरणम् गच्छामि,

आओ आओ रे प्रभु के चरणों में आओ,

भव सागर पार होकर निर्वाण पद पाओ ।

सत धर्म को धारण कर चारो पदारथ पाओ,

सत संगति में बैठ बैठ परस्पर प्रेम बढ़ाओ ।

यही हमारा नारा है

यही हमारी याचना है ।

ॐ शान्तिः

—मार्च १९५९



भारतीय धर्म पर आघात

विदेशों के लगातार आक्रमण और भीतरी फूट के कारण भारत में एक साथ राज्य और धर्म पर ऐसा आघात पड़ा कि चारों ओर हाहाकार मच गया। विधर्मी अपने मजबूत संगठन और आत्मविश्वास के कारण राजपूत राजाओं का सामना करते रहे और एक एक करके सारे भारत पर छा गये। चालाकी और जबरदस्ती से अपने धर्म का प्रचार करना शुरू किया। इससे उनकी शक्ति बढ़ती गयी। गाँव के गाँव मुसलमान बनाये गये। काबुल, तातार, बलूचिस्तान इत्यादि सरहद्दी इलाकों को जीत कर धर्म फैलाया। १५-२० वर्ष के अन्दर देखते देखते सभी विधर्मी बन गये। जो अपने ही भाई यदुवंशी लोग थे, जिनकी बहादुरी का उल्लेख प्रसिद्ध इतिहासकार टाड साहब ने अपनी पुस्तक में किया है, “भारत का भाग्य फूटा जो विदेशी धर्म इस देश में आया।” हमारी परम मर्यादा मिटने लगी। भाषा, भेष और सभ्यता बदलने लगी। सब संस्कृत छोड़ फारसी पढ़ने लगे। मन्दिर नष्ट भूँट होने लगे। बड़ी बड़ी मस्जिदों का निर्माण होने लगा।

उत्तरी भारत की सभ्यता की उस अवस्था को याद कर आज भी आंसू बहाने पड़ते हैं। काशी का विश्वनाथ मन्दिर, राम की जन्मभूमि अयोध्या, मथुरा का विशाल मन्दिर, जौनपुर में अटाला देवी का मन्दिर (जो अब अटाला मस्जिद है) याद दिलाते हैं कि हिन्दू धर्म का कैसा पतन हुआ। उनकी टूटी फूटी मूर्तियाँ उस युग की कहानियाँ कहती हैं। हा, इस तरह भारत माता की छाती पर कितने ही चिन्ह हैं। चोट के कितने ही दाग हैं। याद करके दुःख होता है।

अभी एक सौ वर्ष का इतिहास पूरा नहीं हो पाया था कि पाँच वर्ष हुए, भारत का अंग भंग हो गया। पाकिस्तान का निर्माण हुआ।

इधर हिन्दू धन कमाने और अपनी मर्यादा बढ़ाने में लगे रहे ? धर्म का प्रचार छोड़कर अपने ही भाइयों से घृणा करते रहे । उनका बहिष्कार करते रहे और उधर विधर्मी उनको अपनाते गये और और अपने धर्म का प्रचार करते रहे जिससे उनकी तादाद बढ़ती गयी और देखते देखते पंजाब और बंगाल में आधे से अधिक विधर्मी बढ़ गये । जिन्होंने बाद में पाकिस्तान की माँग की और उन्हें पाकिस्तान मिल गया । जब खराब दिन आने को होते हैं तो बुद्धि भी मारी जाती है ।

हिन्दू नीति का कुछ पता नहीं चलता है । आखिर वे क्या चाहते हैं ? मुसलमान कुरान और मुहम्मद का नाम फैलाना चाहते हैं । हिन्दू क्या चाहता है ? हिन्दू विनाश की ओर जा रहे हैं । नास्तिकता का प्रचार हो रहा है । पाकिस्तान का प्रसार हो रहा है । भारत का आधा परिवार तो पाकिस्तान में है और आधा यहाँ । यही कारण है कि कोई रहस्य छिप नहीं सकता है ।

नौजवान अपने धर्म से नफरत करने लगे हैं । गरीबों की बातें कोई सुननेवाला नहीं है । इसीलिए सभी विदेशी विचारों के शिकार हो रहे हैं । जात पाँत का ऐसा भूत छा गया है कि एक दूसरे को राज काज में घुसने नहीं देने लगे । जातियों में आपसी घृणा बढ़ती गयी ।

और चाहे जो हो, हिन्दू अपने धर्म का विस्तार नहीं कर रहे हैं । जो धर्म के ठेकेदार हैं, वे भी मूर्ख और स्वार्थी हैं । तीर्थस्थानों में कोई खास आकर्षण नहीं दीख पड़ता । जो मुस्लिम या ईसाई पुनः अपने पूर्व धर्म में आना चाहते हैं, उनके लिए कोई स्थान नहीं है ।

भारत का इसी में कल्याण है कि वह निम्नलिखित तीन बातों पर विचार करके उन्हें कार्य रूप में परिणत करके आगे बढ़े—

१. अपने धर्म का विस्तार ।
२. अपनी खोयी हुई सीमाओं को पुनः वापस लेने का प्रयत्न ।
३. एक ईश्वर पर विश्वास और चरित्र का निर्माण ।

योगासन और स्वास्थ्य

हमारे देश में पूर्व काल से योग क्रिया का प्रचार बराबर रहा है। अनेक साधु संत इसी क्रिया की बढौलत सिद्धियों को प्राप्त कर चुके हैं। समय-समय पर योग की विभूतियों का चमत्कार देखने सुनने में आता रहता है। लेकिन पिछले पचास वर्षों से इस तरफ से बेरुखी सी होती जा रही है, जब कि दूसरे पश्चिमी देशों में इसकी खोज हो रही है, उन्नति की जा रही है।

हमारे देश के संपरों की अनेक करामातें, जो पचासों वर्षों से देखने में आती थी, अब बिल्कुल लुप्त सी होती जा रही हैं। रस्सी के खेल, हाथ पैर का कटना और जुड़ना, नागिन का नृत्य इत्यादि कई प्रकार के खेल हैं जो अब प्रायः लुप्त होते जा रहे हैं।

योग की क्रियाओं से अनेक भयंकर रोगों से मुक्ति दिलाना पहले बहुत प्रचलित था। अब धीरे धीरे इस क्रिया को करने वाले लोग गायब होते जा रहे हैं। इधर से रुचि कम होती जा रही है। इसके कई कारण हैं। १—ऊँची श्रेणी के योगी इन सिद्धियों का खंडन करने लगे और जो लोग योग को जीविका का साधन बना चुके थे, उन्होंने दूसरों को बताने से इन्कार कर दिया। २—पुराने पेशेवरों ने अपनी जीविका की रक्षा के लिए इसका प्रचार नहीं किया। अपनी खासियत कायम करने के लिए दूसरों को सिखलाने से मुकर गये। फलतः जिस तरह अन्य विद्यायें करने वालों के साथ ही समाप्त हो गयीं। योग विद्या भी समाप्त होती गयी। ३—ऐसे लोगों की कोई सोसाइटी नहीं बन सकी जिसके द्वारा प्रचार कार्य बराबर चलता रह सकता। राज्य की ओर से भी किसी को उत्साह नहीं मिला जब कि अन्य देशों में अब भी मेस्मरिज्म की विद्या में उन्नति की जा रही है।

अब हम इस लेख के मूल विषय पर आते हैं। हमारे देश का स्वास्थ्य बहुत उत्तम था। रोगी कम होते थे। इसके कई कारण हैं। एक तो शहरों में

इतनी आबादी नहीं थी और न इतनी गन्दगी ही थी। बहुत से रोग शहरों से ही फैलकर देहातों में जाते हैं। रोग शहर की गन्दगी, उत्तम आहार एवं जल के अभाव के कारण फैलते हैं। सबको चिकित्सा की सविधा नहीं मिलती है। फलतः मृत्यु संख्या बढ़ती जा रही है। औसत उम्र इस अभागे देश की प्रायः २५ वर्ष रह गयी है, जब कि दूसरे देशों की औसत आयु ६० से ७५ वर्ष की है।

इस देश की औसत आयु के कम होने के कई कारण हैं—गुलामी, सामाजिक कुरीतियाँ, योग से विमुखता आदि। गुलामी का मुख्य कारण है, राष्ट्र में संगठन न होना, अनेक विचार धाराओं का फैलना, आपसी फूट, सामाजिक कुरीतियाँ, जाति पाँति का भेद, ऊँच नीच का अन्तर, शादी-विवाह में दहेज प्रथा का प्रचलन आदि। शिक्षा की ऐसी प्रथा चली कि रही सही संस्कृति भी जाती रही। नौकरी के लिए पढ़ना और अपना सारा समय नौकरी की चिन्ता में समाप्त करना। यही वजह है कि कला और संस्कृति का सही प्रचार इस देश में नहीं हो सका। अपने देश का बहुत अधिक धन विदेशों से मशीनें खरीदने में व्यय होने लगा। समय और श्रम का मूल्य नहीं समझा गया। चरित्र निर्माण पर ध्यान नहीं दिया गया। काम कम, आलोचनाएँ अधिक होने लगीं। फलतः समाज अवनति की ओर बढ़ता गया।

योग शिक्षा का मुख्य उद्देश्य था, स्वास्थ्य, चरित्र, आत्मबल, दूरदर्शिता, आत्म विश्वास, विवेक, इच्छा शक्ति की प्रबलता, ईश्वर पर अटूट विश्वास और इसी प्रकार की बहुत सी बातें।

योग से आत्मबल बढ़ता है और आत्मबल से ही मनुष्य मनुष्य बनता है। हमारे पूर्वजों ने समुद्र मंथन किया था। उससे कई रत्न निकाले गये थे। इसका मतलब यह नहीं कि यह मंथन मथानी से हुआ था। वे लकड़ी के जहाजों पर सारे द्वीप द्वीपान्तरो में जा जा कर धर्म प्रचार और सभ्यता का प्रसार करते थे। हमारे देश की विदेशी यात्रियों ने बड़ी प्रशंसा की है।

अब योग क्रिया का फल लिखते हैं। इससे मन शान्ति की ओर जाता है। शरीर निरोग हो जाता है, आत्म दर्शन होता है। दुनिया एक तमाशे की तरह लगती है। निष्काम कर्म करते करते योगी मोक्ष को हासिल कर लेता है। दुनिया उसे जीवनमुक्त कहते हैं।

प्यारे पाठको, योग क्रिया की ओर ध्यान दो। धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष चारों पदार्थ मिलेंगे। तुम स्वस्थ रहोगे और सारा वातावरण स्वस्थ रहेगा। इसका प्रचार अवश्य होना चाहिए। योगासन आज से ही आरम्भ कर दो। जब शरीर निरोग होगा तो मन भी बली होगा। जब मन बली होगा तो आत्मा भी बली होगी और जब आत्मा बली होगी तो संसार के कठिन से कठिन कार्य को तुम आसानी से कर सकते हो। अपना कल्याण और देश का हित कर सकते हो। आओ, योग की विधि हमारी इस योजना से सीखो। देखो लाभ होता है या नहीं, स्वयं अनुभव कर सकते हो।

ओउम् शान्तिः

(आनन्द बाग, कानपुर)



राजनैतिक हलचल

राजनैतिक क्षेत्र में हर एक मनुष्य का जन्मसिद्ध अधिकार है कि वह अपनी राय दे सके और राजकाज में उसका भी हाथ हो। स्वराज्य भी एक पंचायत है जिसमें किसी प्रकार का रंग भेद या जाति भेद नहीं होना चाहिए। बुरे भले की तमीज सभी को होती है। सभी यह भी जानते हैं कि कौन कौन शुभचिन्तक हैं। उन्हीं को अपना नेता बनाना चाहिए। आज दुनिया टिकट के भरोसे चल रही है। टिकट खरीद कर नेता बनते हैं। यह गलत बात है। स्वार्थी, हठी और चरित्रहीन पुरुष ही दुनिया का डिक्टेटर बनना चाहते हैं और जब जब भी दुनिया में डिक्टेटर शिप रही, दुनिया का सत्यानाश होता रहा है।

प्राचीन काल में चक्रवर्ती राजा भी प्रजा की राय से प्रजा की सेवा करते थे। प्रेम भाव से प्रजा को पुत्रवत् मानते थे। आज प्रजा का खून चूसना ही राजनीति समझी जाती है। एक दूसरी कौमों को लड़ाना, आपस में फूट डालना, दुतरफी बातें करना, व्यवहार में कपट रखना ही राजा का साम दाम दण्ड भेद कहा जाता है। मेरे विचार से ऐसा राजा अन्यायी है। ऐसी नीति गलत है।

आजकल संसार में शान्ति के बहुत उपाय सोचे जा रहे हैं। हमें नई दुनिया बनानी है। छूत छात छोड़ कर एक मानव जाति बनाती है। रंगभेद, भाषा भेद नहीं होना चाहिए। तभी शान्ति स्थापित हो सकती है। अगर इसी तरह झगड़ा बना रहा तो दुनिया नष्ट हो जायगी। संसार में मानव नहीं रहेगा। जानवर ही जानवर रह जायेंगे। धर्म, कर्म, पीर पैगम्बर, अवतार कौन मानेगा? मेरा कहना है कि ऐ दुनिया वालो, आपस में प्रेम उत्पन्न करो, दुनिया एक घर है। घर में मेल रखो, तुम्हारा भला होगा। अपने को श्रेष्ठ और दूसरों को तुच्छ कभी न समझो। अगर किसी वजह से कोई गलती हो जाय तो फौरन

जोश में आकर कोई ऐसा कर्म न करो जिससे अशान्ति पैदा हो जाय । दूसरों को माफ करना चाहिए । यही मनुष्यता है । किसी तरह का बदला नहीं लेना चाहिए । अपने कर्त्तव्य पर दृढ़ रहो और भावना ऊँची रखो । ईश्वर सुबुद्धि देंगे ।

ऋषि मुनि सन्तों का आदेश

ऋषि किसी खास जाति और रंग के नहीं होते हैं । जो संसार को कुटुम्ब समझते हैं, हमेशा जीवों के कल्याण के लिए विचार करते हैं, अन्तर्मुखी होकर ब्रह्मलीन रहते हैं, वही सन्त और ऋषि हैं । हर एक युग में किसी न किसी रूप में ये आते हैं और जगत को संदेश दे जाते हैं । परमात्मा का चिन्तन, मनन, निदिध्यासन, उपदेश किया करते हैं । वही ऋषि और सन्त हैं ।

पाकिस्तान

हमारे भाई मुसलमान जो अब से चार पाँच सौ वर्ष पूर्व इसी देश में हिन्दू धर्म छोड़ कर जबर्दस्ती, खुशी या निराशावश हिन्दू जाति के बहिष्कार या अपमान से अलग होकर इस धर्म में मिले; आज राष्ट्रीय उत्थान के समय विशाल हिन्दू जाति से बदला लेना चाहते हैं। हिन्दुस्तान को छोड़कर पाकिस्तान बनाना चाहते हैं।

यहाँ दोनों कौमों के लोग बहुत दिनों से हिलमिल कर रहते आये हैं और समय समय पर एक दूसरे में तबदील भी होते रहे हैं। बहुत से हिन्दू हर साल इस्लाम धर्म में शरीक होते रहे हैं। धीरे धीरे यह विशाल जाति बन गयी है। हिन्दुओं की छूतछात नीति की वजह से ये पुनः अपने धर्म में शरीक नहीं होने पाते हैं और इस प्रकार के धर्म परिवर्तन से उनके परिवार के लोग भी उन्हें शरीक नहीं करते हैं।

इन सब खराबियों को देखते हुए मुझे तो ऐसा मालूम होता है कि अगर इस जमाने का यही रवैया है कि देश को टुकड़ों में बाँट दिया जाय तो बाँट दो, झमेला खत्म हो जाय।

जब तक भाई भाई अलग अलग रहते हैं, अपनी अपनी कमाई और तरक्की के जिम्मेवार रहते हैं। देखा भी यही गया है कि इस तरह के लोग ज्यादा तरक्की करते हैं।

जब दोनों जातियों के विचार एक दूसरे से बिल्कुल विपरीत हैं तो क्योंकि आपस में मिल सकते हैं। अब यह जमाना आ गया है कि एक दूसरे को कोई सह नहीं सकता है। मेरे विचार से यदि पाकिस्तान बना दिया जाय तो हिन्दू जाति अधिक संगठित होकर जल्दी उन्नति कर सकती है और रोज रोज का झगड़ा कम हो सकता है।

महाशोक, हा बापू ! महाशोक ! !

युग प्रवर्त्तिक महात्मा गांधी के हत्यारे नाथूराम ! तुमने इस महात्मा के खून से अपना हाथ क्यों रंग लिया ? तुम्हारा क्या बिगाड़ा था उसने ? जिस व्यक्ति को संसार पूजता था, सर्वश्रेष्ठ समझता था, उसको किसके बहकावे में आकर तुमने मारा ? बतला, सच बतला, आज दुनिया पूछना चाहती है कि तुमने हिन्दू धर्म के नाम पर बापू की हत्या क्यों की ? भवानी का चरण छूकर तुमने बलि चढ़ाई । तेरी भवानी कई महापुरुषों का रक्त पी चुकी है ।

तुम्हीं ने क्षत्रिय वंश का नाश कर वाम मार्ग पर चल वैदिक धर्म को लुप्त कराया था । राम राज्य की स्थापना के समय मंथरा के मन में बैठकर तुम्हीं ने राम को बन भिजवाया था । तुमने ही षड्यन्त्र रचकर सीता का हरण किया । ऐ काल पुरुष, तुम्हारे वाम मार्ग के प्रचार से ही जगह-जगह पशु बलि की प्रथा चली । खून की नदियाँ बहने लगीं और तुम्हारी भवानी रक्त पान कर डकार लेने लगी ।

भगवान बुद्ध ने संसार में जब अहिंसा का प्रचार किया तो तुम्हारी बोलती बन्द हुई । पर तुमसे नहीं रह गया । तुमने घमण्ड से चारों दिशाओं में गुप्त फरसा भगवा में छिपा कर, हिंसा का झंडा लेकर तहलका मचाया और अहिंसा धर्म को नष्ट किया । मन्दिरों की मूर्तियों को तोड़कर भिक्षुओं को मरवा कर शैव धर्म का प्रचार किया । किन्तु तुम्हारी लालसा पूरी नहीं हुई । तुम्हारी भवानी भी चुप नहीं रही तुमने बड़ा बड़ा षड्यन्त्र रचा, दिल्ली का सिंहासन लेना चाहा, पर सफल नहीं हो सके । पुत्र की इच्छा करने वाली तारा वाई को सती कराया । हे काल पुरुष, तुम्हारा जवड़ा बड़ा भयंकर है । तुमने गुरु गोविन्द सिंह के नौनिहालों को पकड़वा कर मरवा डाला । तुमने दयानन्द के वेद भाष्य को पूरा नहीं होने दिया । तुम बड़े षड्यन्त्र कारी हो । अब तुमने प्यारे बापू का खून कर अपनी भवानी को खुश करना चाहा है । तुम्हारे इस

कार्य को सुन कर तुम्हारे अनुयायियों ने मिठाइयाँ बँटवाई । किसी को तुम्हारी चाल समझ में नहीं आयी थी । अन्यथा बापू का अन्त तुम इतनी आसानी से नहीं कर सकते थे । अब दुनिया तुम्हारी चाल को समझ चुकी है । अब तुम्हारे लिए इस देश में कोई स्थान नहीं रह गया है ।

अतः हे काल पुरुष, अब तुम अपनी मनोवृत्ति को बदल डालो । यह तुम्हारे लिए प्रायश्चित्त है । तुम जैसा अभागा इस देश में क्यों पैदा हुआ ? अपनी भयंकर भवानी को यहाँ क्यों लाया ? चांडाल वृत्ति वाले, याद रखो, अब तुम जल्दी ही नष्ट हो जाओगे और संसार में बापू की वाणी का अवश्य प्रचार होगा । हे काल पुरुष, परमात्मा को याद करो । हिंसा का विचार त्यागो । बापू के कत्ल का पाप तुम्हारे सिर पर है । अब तुम शान्त हो जाओ । याद रखो, तापयन्त्र में गर्मी नीचे से ऊपर को चढ़ती है और शीतलता ऊपर से नीचे जाती है ।

७-२-४८

ब्राह्मण देवता सावधान !

धर्म के ठेकेदार !

जाति के अगुआ ! !

सावधान ! ! !

तुमने समय-समय पर देश और जाति को बाँटा, धर्म के लिए महान क्रान्ति का संगठन किया और क्षात्र धर्म का नाश किया। तुम ब्राह्मण देव बने और तुम्हीं ब्रह्मराक्षस भी बने। तुम महाशक्ति हो। तुमने फरसा पसन्द किया। उसे रक्त में भिगोया और फिर भगवा में छिपाकर “एको ब्रह्म द्वितीयो नास्ति” का नारा लगाया। अहिंसा को बौद्ध धर्म के साथ समुद्र के उस पार विदा कर दिया। विशाल आर्य जाति को, जो अविजित थी टुकड़ों में बाँट कर अनेक उप जातियों में बदल दिया। पेशा के अनुसार जातियाँ बनीं। सब जगह छुआछूत का भूत फैलने लगा। जगह-जगह चुड़ैल की पूजा होने लगी। मारण एवं उच्चाटन मंत्र का जाप होने लगा। एक दूसरे से घृणा होने लगी। विदेशी धर्म और जातियों को अलग अलग रखा, जो अपने में से उनमें मिला उसका बहिष्कार किया। परिणाम जो हुआ, सबको मालूम है।

स्त्री एवं शूद्रों को वेद पढ़ने से रोका गया। सबका अधिकार छीन लिया। तुम्हारी डिकटेटरी गाँवों और कस्बों में खूब चलने लगी। तुम्हारे बिना अब कोई काम नहीं होने लगा।

ब्राह्मण देव ! उठो, जागो !! धर्म की बछिया तुम्हारे लिए चिल्ला रही है, प्यासी और भूखी है। तुम्हारे लिए कर्म का क्षेत्र हमेशा से खुला रहा है। किन्तु तुम्हें सूखा दान देकर तुम्हें निकम्मा बना दिया गया है। तुम्हारी जाति का अपमान किया गया है। इसमें किसी का दोष नहीं है। केवल समय का दोष है। इस युग में भी तुम्हारी जाति में अनेक महापुरुष उत्पन्न हुए हैं।

अहंकार छोड़ो, धर्म की पताका पकड़ो, नयी क्रान्ति को जन्म देने वाले महान नेता ऋषि दयानन्द महाराज के जीवन को पहचानो । उनके बताए हुए मार्ग पर चलो । सबका कल्याण होगा ।

धर्म की नींव पड़ गयी है । विशाल आर्य जाति को एक बार फिर से चमका दो । धर्म की पताका लेकर देश देश में फैल जाओ । वैदिक धर्म का प्रचार करो, जैसा पूर्व पुरुषों ने किया था । वैदिक रीति से शादी विवाह संस्कार कराओ ताकि वैदिक संस्कृति का प्रचार हो । वर्मा, मलाया, सिंगापुर, जावा, सुमात्रा आदि द्वीपों में, दक्षिण के हजारों लाखों वर्ष पुराने मन्दिर और अन्य चिन्ह मिलते हैं । तुम्हारी संस्कृति और भाषा की सभी प्रशंसा करते हैं ।

भारत के महान मस्तिष्क जागो और पिछड़ी जाति के १२ करोड़ असहाय एवं दलित हिन्दू भाइयों के सामाजिक, धार्मिक तथा राजनैतिक अधिकारों को उन्हें सौंप दो । इससे भारत की कमजोर जातियाँ जल्दी ही उठ खड़ी होंगी । विद्या विहीन स्त्री पुरुष ज्ञानार्जन कर संसार में अपना सिर उठा सकेंगे । इसलिए जागो और जगाओ, छूतछात और भेद भाव को छोड़ो । तुम सबके पुरोहित हो, इसलिए सबको जगा दो ।



उद्गार

डायरी के पन्ने

ज्ञान
मार्ग
से
का
वाह
पुर,
और
हैं ।
रोड़
तक
उठ
ठठा
तुम

डायरी के पन्ने

१. इन्डस्ट्री की तरक्की कैसे हो ?
२. उन्नतिशील पंजाब प्रान्त
३. हमारा फर्ज
४. परमात्मा की बनायी हुई सृष्टि
५. अपना राजनैतिक व धार्मिक
६. एक कालोनी
७. हे इन्द्र
८. शूद्र श्रेष्ठ हैं
९. बाटानगर
१०. गरीबी मुहताजी
११. नागपुर में
१२. अब समय सावधानी का
१३. विदेशों में जाना

इंजीनि
काम
में बंट
आसा
तैयार
वाका
है।
उनकी
अच्छा
पूरी ब
के क
वगैरह
कि ल
बनाये

खोलें
डाफ्ट
आवश
टू निग
रानी
नदी से

इंडस्ट्री की तरक्की कैसे हो ?

अपने हिन्दुस्तान के बहुत से लड़के साइंस पढ़ते हैं। उनको कालेजों में इंजीनियरिंग की ट्रेनिंग देनी चाहिए, जिससे वे अपने देश में तरह तरह के काम के लिए इंजिन, कल पुर्जे वगैरह बना सकें। गाँव के लोग अपनी झोपड़ियों में बैठ कर छोटे छोटे कारबार जैसे बटन, पिन, आलपिन इत्यादि सामान आसानी से बना सकते हैं। तरह तरह के रंग भी कुछ खास जड़ी बूटियों से तैयार किये जा सकते हैं। हमारे पास खेत हैं, बड़ी संख्या में जमीन है। बाकायदे खाद डालें और कायदे से खेती करें। खेती भी एक उत्तम रोजगार है। इससे गरीबों की परवरिश भी हो सकती है। रुई बोकर पैदा करने से उनकी सूती कपड़े की जरूरत पूरी हो सकती है। अच्छी भेड़ें पालने से उन्हें अच्छा ऊन मिल सकती है जो कि उनकी कम्बल व वस्त्र वगैरह की जरूरत पूरी कर सकती है। गाँव में बसे जुलाहों को शौक होना चाहिए कि तरह तरह के कमीज के कपड़े, धोती, तौलिये, चादरें वगैरह बनावें और रजाई के कपड़े वगैरह छाप कर तयार करें। इन सबके लिए हम सभी मुल्क वालों को चाहिए कि लायक कारीगरों को जाहिल न समझें, उन्हें इज्जत का दर्जा दें। उनके बनाये सामान खरीद कर उनकी हिम्मत बढ़ायें।

हमारे देश के बड़े बड़े सेठों को चाहिए कि वे बड़े बड़े कल कारखाने खोलें। लड़कों को अपने यहाँ काम सिखा कर उन्हें इंजीनियर, फोरमैन, ड्राफ्ट्समैन वगैरह टेकनीकल आदमी बनायें, जिससे अंग्रेजों को रखने की आवश्यकता न पड़े। उनमें अच्छे दिमाग वाले लड़कों को साइन्स पढ़ाकर आगे ट्रेनिंग के लिए विलायत भेजें। हमारे मुल्क के बड़े बड़े इंजीनियरों को जहाज रानी का कारखाना खोलना चाहिए। उन्हें हवाई जहाज भी बनाना चाहिए। नदी से सफर करने वाले छोटे छोटे मोटर बोट बनाना चाहिए। इन सब कामों

के लिए दिली शौक पैदा करने के लिए टेक्नीकल कालेजों के मास्टर्स का भी काम है। उन्हें सिर्फ डिग्री दिला कर नौकरी के लिए जगह जगह भटकने वाला बना देने से मुल्क की तरक्की नहीं हो सकती है। × × ×

अफसोस की बात है कि मैं इस समय एक ऐसे मजमून पर लिखने बैठा हूँ जबकि मैं बीमार हूँ। विस्तर पर से मजबूरन उठ कर बैठ गया हूँ; क्योंकि मैं पड़े पड़े एक दूसरे लड़के की जबानी 'पीटर वेनिस' नाम के एक बादशाह की जीवनी सुन रहा था, जिसे सुन कर जोश आ गया और कुछ ख्याल जाहिर करने बैठ गया हूँ। कमजोरी की वजह से इस नोट को यहीं छोड़ रहा हूँ। फिर कभी न कभी इसे पूरा करूँगा।

१४-१२-१९१७

सबसे
Sir

मिस्ट

विश्व

कहा

पता

पम्प

मालूम

तीन

रवान

जो स

स्टेशन

देखा

पड़े

कितन

गये ह

साहव

रहने

केवल

उन्नतिशील पंजाब प्रान्त

कानपुर में एम्पायर इंजीनियरिंग कं० लि० है जो कि उत्तरी हिन्दुस्तान का सबसे बड़ा इंजीनियरिंग वर्क्स है। इस कम्पनी के मालिक सर ट्रेसी गेविन जोन्स Sir Tracy Gavin Jones हैं। १९-७-१९१९ की शाम को हमारे आफिसर मिस्टर हैफ (Mr. Haiff) ने हमसे कहा कि कल शाम को तुमको हेडमिस्त्री विश्वनाथ और दो फिटर्स को हमारे साथ लाहौर जाना है। बड़े साहब ने आज कहा है इसलिए तुम तैयार रहना। हमने पूछा कि वहाँ क्या काम है? तो पता चला, लाहौर किले में मिलिट्री रहती है। उसे पानी की बहुत तकलीफ है। पम्प फेल हो गया है। उसे ठीक करना है। और क्या काम है, वह जाने पर मालूम होगा। दूसरे दिन सुबह कम्पनी गया। शाम को लाहौर जाना था। तीन बजे मि० हैफ ने आकर बताया कि हम लोग दूसरे दिन लाहौर जायेंगे।

हम लोग दूसरे दिन शाम को कानपुर से कुछ जल्दरी औजार लेकर रवाना हो गये। सुबह देहली पहुँचे। वहाँ से दूसरी गाड़ी दो घण्टे बाद मिली जो सीधे लाहौर जाती थी। अमृतसर जब साठ मील रह गया तो एक छोटा स्टेशन आया। हमारी गाड़ी नहीं रुकी। मेलट्रेन थी। इस स्टेशन पर हमने देखा कि दो ट्रेनों आपस में लड़कर चकनाचूर हो गयीं थीं और मुसाफिर मरे पड़े थे। यह वही गाड़ी थी जिससे हम लोग आने वाले थे। भगवान की कितनी बड़ी दया थी, नहीं तो उसी गाड़ी से चले होते और हम लोग भी मर गये होते।

हम लोग दूसरे दिन लाहौर पहुँचे। किले के मिलिट्री आफिसर से हमारे साहब मिले। मिलिट्री आफिसर ने हम लोगों को कमरे दिलवा दिए। हमारे रहने का इन्तजाम आरामदायक था। खाने का भी इन्तजाम उनकी ओर से था। केवल हमें पानी की तकलीफ उठानी पड़ी। हमने कोई कुआँ तलाश करने का

इरादा किया। एक आदमी मिल गया। उसने बताया कि किले से थोड़ी दूर पर कुआँ है। जाकर देखा, लेकिन पानी निकालने के लिए अपने पास रस्सी नहीं थी। एक साथी ने जाकर स्टोर से रस्सी मांगी। तब कहीं हम लोग नहा पाये और पीने के लिए पानी का इन्तजाम कर सके। चार दिन में हमने पम्प ठीक कर दिया। पम्प ठीक काम करने लगा। फिर दो दिन और रुके, यह देखने के लिए कि पम्प ठीक काम कर रहा है या नहीं। तब तक हम लोग लाहौर खूब घूमे। वहाँ एक आर्य समाज का मंदिर और डी० ए० वी० कालेज की विशाल लायब्रेरी देखी। सुन्दर सुन्दर मकान, बड़ा सा बाजार, अनारकली बाजार भी देखा। गलियों में कुछ छोटे छोटे कारखाने, कारीगर लोग कहीं छोटी खराद लगाये हुए हैं। छोटी ढलाई हो रही है। बड़ई लोग फरमा या फरनीचर बना रहे हैं।

कितना तेज काम करते हैं यह पंजाबी कारीगर। हम लोग यह देखकर हैरान रह गये। सुन्दर सुन्दर वच्चों को लेकर औरतें शाम को बाजार में सामान खरीदने निकलती हैं। बड़ी चहल पहल भरा और साफ सुथरा शहर है। एक दिन हमें रविवार का भी मिल गया। हम साहब से पूछकर आर्य समाज चले गये। वहाँ पर एक अच्छे विद्वान का भाषण हो रहा था। वे बता रहे थे कि हमारा सच्चा मालिक कौन है ! हमें उनके विचार सुनकर बड़ी खुशी हुई और हमारा मन भी प्रसन्न हो गया। हमारा पंजाब का सफर सफल रहा। सबसे बड़ी बात तो यह थी कि भगवान ने हमें रेल दुर्घटना से बचा लिया। दूसरी बात यह थी कि यहां आर्य समाज का बड़ा प्रचार है। दान की बहुत बड़ी रकम आती है। सेठ लोगों ने बड़े बड़े कमरे बनवा दिये हैं। गरीबों की दवा के लिए अस्पताल है जहाँ मुफ्त दवा दी जाती है। अपने सूबे से पंजाब हमें खूब उन्नतिशील मालूम हुआ।

२९-७-१९१९

हमारा फर्ज

धर्म हमको बताता है कि क्या अच्छा है और क्या बुरा है। हमें वही काम करना चाहिए जिसे धर्म सिखाता है। जिस समय हम दुनिया में पैदा होते हैं, हमारा फर्ज हो जाता है कि हम पुरुषार्थी बनें; जिससे आजादी की लड़ाई में हम भी अपने जीवन की बाजी लगा दें। जो लोग बेकार घूमते रहते हैं, उनका जीवन बेकार जाता है। हमारा फर्ज है कि हम बचपन का, जो पढ़ने का समय है, उस समय खूब पढ़ें और टेकनीकल कार्य सीखने के लिए अपने मुल्क में जो भी अवसर मिले, सीखें। बड़े बड़े कारखानों में तजुर्बा हासिल करें और फिर नौकरी की ओर ध्यान न देकर अपना निजी कारोबार चलावें। कम ही लोगों को मालूम है कि जब तक हमारी शोपड़ियों में रहने वाले तरक्की नहीं करेंगे तो हम यह नहीं कह सकते कि हमारा मुल्क तरक्की कर रहा है। लॉग शहरों में तो भले ही कुछ करने को तैयार भी हो जाते हैं पर देहात में जाकर काम करने को बिल्कुल तैयार नहीं होते। ऐसी हालत में मुल्क की तरक्की कैसे सम्भव हो सकती है ?

अपने मुल्क के हर रहने वालों का फर्ज है कि देश की तरक्की में ही अपनी तरक्की समझें और देखें कि किन किन चीजों की देश में जरूरत है। फिर खुद कोशिश करके नई-नई चीजों की ईजाद करें। इन्सान को चाहिए कि अपने मुल्क की भलाई के लिए खुद आरा मशीन, ड्रिल मशीन वगैरह कारखानों में चलावें और दूर दराज मुल्कों में जाकर नई चीजें सीख कर आयें। फिर अपने देश में उनको फैलावें।

एक बार मैं अपनी रिश्तेदारी में गया था। वैसे तो मैं कहीं नहीं जाता था क्योंकि लोग मेरी ओर उँगली उठाकर कहते थे कि यह वही लड़का है जो लखनऊ में लोहार व बढ़ई का काम सीख रहा है। वहाँ एक देवी जी ने

मेरी चाची जी से फिर वही सवाल पूछ लिया कि मैं ही लखनऊ में लोहार व बढ़ईगीरी का काम सीख रहा हूं जिसे सुनकर मुझे बड़ा दुख हुआ और मैंने पक्का इरादा लिया कि मैं इंजीनियर बनूंगा। मैंने भगवान से प्रार्थना की कि हे भगवान मुझे सफलता दो ताकि मैं रिश्तेदारों को दिखा सकूँ कि मैंने वास्तव में किस चीज की तालीम पाई है। मैं कभी न कभी अपना कारोबार दो या एक मशीन लगाकर चलाऊंगा। इसी तरह से हर लड़का कुछ न कुछ काम सीखकर निजी कारोबार चलावे तो देश की जरूर तरक्की होगी। फिर विलायत से सामान कम मँगाया जा सकेगा और तभी अपने मुल्क की सच्ची तरक्की होगी। दुनियाँ की आँखों में अपने देश की इज्जत बढ़ेगी। यही हमारा फर्ज है।

१४-१२-१९१९

परमात्मा की बनाई हुई सृष्टि को देख कर यह भाव उत्पन्न होता है कि इस विचित्र जगत को किस तरह बनाया होगा। सुन्दर विशाल पहाड़, विचित्र रंग के लता-द्रुम, फल-फूल, जन्तु-पक्षी, जलचर, थलचर, विभिन्न मानव जाति, ऋतुएँ, आँधी, तूफान, तारागण, सूर्य, चन्द्र ग्रहण, जन्म मरण, शोक-हर्ष, उन्नति-अवनति आदि नाना प्रकार की घटनाओं को देखकर यही कहना पड़ता है कि प्रभु तेरी लीला अपरम्पार है। यह जगत जब ऐसा है तो आप किस तरह के होंगे।

प्यारे प्रभु, तू धन्य है। तू इन आँखों से देखा नहीं जा सकता है। किन्तु तेरी कीर्ति देख सकते हैं, सुन सकते हैं, सूँघ सकते हैं, चख सकते हैं, भाषण कर सकते हैं, विचार कर सकते हैं। प्रभु तू तो आत्मा में विराजमान है। जब तक मैं स्वयं अपने को नहीं जान लेता हूँ, तुझे कैसे जान सकता हूँ— मैं तो खुद भूला हुआ हूँ।

मेरे प्यारे प्रभु,

मेरे प्यारे,

तू ही सदा सुखदाई है ।
गिर गया हूं यहाँ,
ठोकर खाकर,
वचा ले मझे, दुहाई है ।

मेरी आत्मा ने परमात्मा से बार बार दुखी होकर प्रार्थना की है । ध्यान मग्न होकर मन शुद्ध करके जब खुद ही आईना बन गया तो प्रभु का दीदार पाया । अद्भुत प्रकाश ही प्रकाश देखकर मन, चित्त, बुद्धि, अहंकार सभी मुग्ध हो गये । मैं खुद बेहोश हो गया । ऐसी अवस्था बार बार आने से जीव आवागमन से छूटकर महा आनन्द प्राप्त कर लेता है । 'सत-चित्त-आनन्द' भासित होने लगता है ।

८-८-४५

.....अपना राजनैतिक व धार्मिक अधिकार लेना ही पड़ेगा । इस जमाने में भी अभिमानी जाति की धार्मिक पाठशालाओं में अब्राह्मणों को नहीं पढ़ाया जाता है ।

वेदों का पढ़ना-पढ़ाना सबका धर्म है । ऋषि दयानन्द ही इस युग में एक ऐसे क्रान्तिकारी हुए जिन्होंने कांग्रेस और हिन्दू सभा के पूर्व ही आर्य समाज कायम किया और वेदों का पठन-पाठन सबका अधिकार बतलाया । उन्होंने अछूत और स्त्री जाति के लिए जो कुछ किया, हम उसे भूल नहीं सकते हैं । अनेक स्त्रियों एवं अछूतों ने पढ़ कर अपने अपने वर्ग का सुधार किया ।

महान नेता भगवान् अम्बेदकर ने भी बड़ौदा नरेश और आर्य समाज के मुख्य विद्वान् मास्टर आत्माराम के उद्यम से शिक्षा ग्रहण की और 'महार' जाति के महान नेता हुए । 'महार' के माने महा अर्थात् श्रेष्ठ जैसे महाब्राह्मण याने श्रेष्ठ ब्राह्मण । आर्य होने में या आर्य कहलाने में कोई अन्तर नहीं है । अब हम जितनी जातियाँ जंगली देखते हैं, वे सभी तपोभूमि की आर्य जातियाँ

हैं। वे लोग वानप्रस्थ अवस्था में रहते थे। अगर किसी को समाज से निकाला जाता था तो यही दंड दिया जाता था कि उसे जंगलों में भेज दिया जाता था। यही कारावास था। इसका उल्लेख अनेक ग्रंथों में हुआ है। वहाँ भेजने का मतलब यह होता था कि दंडित व्यक्ति जंगलों में तपस्वी के साथ रह कर सुधर जायगा। जो लोग सुधर जाते थे, उन्हीं में से देवता, ऋषि, मुनि हुए। जो नहीं सुधरते थे, वे ही दस्यु, राक्षस, चांडाल हो जाते थे। कालक्रम से जंगलों में रहने वाले लोग कोल भील, संधाल, गोंड, कहलाये जो जंगलों के मूल निवासी माने जाने लगे।

कुछ लोगों का मत है कि आज से करोड़ों वर्ष पूर्व आर्य बाहर से आये और मूल निवासियों को जीत कर उन्हें जंगलों में भेज दिया। यह प्रचार मिशनरियों का है जो हिन्दू जाति को दो टुकड़ों में बाँटना चाहते हैं। आज उनकी इच्छा पूरी हुई।

पुराने यूरोपियन इतिहासकारों और नवीन खोज करने वालों में अन्तर है। भारत वर्ष से ही आर्य लोग सभी देश देशान्तरों में गये। द्वीप-द्वीपान्तरों में फैले। जिनके निशान अभी भी मौजूद हैं। हमको इतिहास उल्टा पढ़ाया जाता है। भाइयो, आर्य समाज के विद्वानों ने पहले ही खतरे की घंटी बजाई थी। अन्य सम्प्रदाय वाले सुनकर सो गये। अब जागो, समानता का व्यवहार करो। सबका हक बराबर है। अगर जीना चाहते हो तो जियो और जीने दो। नहीं तो अकाल मृत्यु सिर पर मँडरा रही है जिससे कोई नहीं बचा सकेगा।

✕

✕

✕

एक कालोनी ऐसी बनायी जाय जो गरीबों और उपेक्षितों के लिए मांडल वालोनी हो। यहाँ सब उद्योग धन्धे का काम हो और उनके लिए दवा एवं इलाज तथा धार्मिक शिक्षा की व्यवस्था हो। देश में सस्ता माल तैयार किया जाये और इसकी बिक्री के लिए जगह जगह सेल्स शाप (sales shop) खोली जायँ। इस उद्योग धन्धा के चालू होने से लोग हमारी तरफ खिंचते चले आयेंगे और हम उनकी माँग को पूर्ण कर सकेंगे।

हमारे अमीर और खुशहाल भाइयों का क्या फर्ज है, वे जानते होंगे । गरीब भी क्या कर सकते हैं, वे भी जानते होंगे । अगर गरीब भाई अपने समय की कदर करें तो इस प्रकार के उद्योग धन्धे से सुख प्राप्त कर सकते हैं । दौलत समय और मेहनत की टक्कर से पैदा होती है । सादगी और सच्चाई मनुष्य को मानव बनाती है । ऐसे ही लोग ईश्वर को जान सकते हैं । जो लोग परायी पीर को नहीं पहचानते, वे दुनियाँ में देखते हुए भी अन्धे हैं ।

भाइयो, याद रखिए, दुनिया को जगाने वाला आर्य समाज था । यही एक पहरेंदार है जिसने देश की संस्कृति की रक्षा कर राष्ट्र की सच्ची सेवा की है । लेकिन अफसोस है कि जब सारी दुनियाँ जाग उठी है, सवेरा हो गया है तो आप सो रहे हैं । यह प्राकृतिक नियम जरूर है कि जो दूसरों को जगाता है, वह भी कुछ देर के लिए सो जाता है । लेकिन इसका मतलब नहीं है कि चौकीदार हमेशा सोता रहे । वह उठता है और सोये हुए लोगों को पुनः जगाता है । इसलिए हे आर्य पुरुष, उठ खड़े हो । देश और जाति की सेवा करो । गरीबों और बेकारों की सहायता करो । उनके दुखों में भाग लो । स्वयं खुश रहो और दूसरों को भी प्रसन्न करो । मंदिर, मस्जिद, शिवालय, धर्मशालाएँ बहुत बने, अब सच्ची धर्मशाला बनाओ, जिससे तुम्हारे धन का पूरा पूरा सदुपयोग हो सके । नहीं तो संसार में अशान्ति ही अशान्ति फैलेगी ।



हे इन्द्र, तू बड़ा पराक्रमी है, तेजस्वी है । तू संसार में अपनी सत्ता कायम किये रहता है । तेरे पास बड़ी शक्ति है । तू स्वयं राज करता है । तू बड़ा बलिष्ठ है लेकिन तू उससे भी बढ़कर अहंकारी है । तू किसी का तप नहीं देख सकता । तू तपस्वी का तप भंग करने के लिए प्रपंच करता है । तू प्रपंची है । तुझे डर है कि महान तपस्वी तुम्हारा इन्द्रसन छीन लेगा । इसीलिए तू नाना प्रकार से उस तपस्वी का तपोभंग करने की कोशिश करता है । तू ऐसा क्यों करता है ? क्या तुझे नहीं मालूम है कि तूने भी किसी काल या योनि

८६

में इसी प्रकार का तप किया होगा । तू ऐश्वर्यवान अवश्य है किन्तु किसी की उन्नति नहीं देख सकता । तू अहंकारवश ही योगभ्रष्ट होता जा रहा है । जब तू इन्द्रासन पर बैठता है, तेरा अहंकार उग्र हो उठता है ।

हे इन्द्र ! सद्गुरु, अकाल पुरुष, परमात्मा का ध्यान किया कर । तू अहंकार त्याग कर तप कर । सद्विचार ही जीवन को श्रेष्ठ बनाता है ।



के लि
भी व
नोकर
पहले
की क

उनको
सकता
पेशाव
जाता
अधिक
वालों
भी शूद्र
कार्य स
समझते
शूद्रों क
होते हैं
शूद्र जा

वे भाग
हैं जहां

शूद्र श्रेष्ठ हैं

शूद्रों का काम सेवा है, यानी 'पब्लिक सर्विस'। यह समाज के संगठन के लिए आवश्यक है। आई० सी० एस० भी सर्वश्रेष्ठ शूद्र का काम है। आज भी बड़े बड़े हाकिम अपनी चिट्ठी के अन्त में लिखते हैं कि आपका 'वफादार नौकर'। ऐसा प्रायः सभी 'पब्लिक सर्विस' करने वाले लिखते हैं। इस युग से पहले समाज की सेवा बड़ी अच्छी 'सर्विस' समझी जाती थी। अब भी हाकिमों की कदर होती है।

पेशेवरों को भी, जिनमें दफ्तरों, दस्तकारी के काम करने वाले हैं, उनको शूद्र कहा जाता है। आजकल कोई अपने को पूर्ण ब्राह्मण नहीं कह सकता। वैसे क्षत्रिय और वैश्य भी कहलाने के योग्य नहीं हैं। अतः शूद्र पेशावर ही समाज के समाज के हितकारी और आदरणीय हैं। इस युग में सुना जाता है शूद्रों का राज्य होगा। बात सही है। क्योंकि शूद्रों की जनसंख्या अधिक है। हर एक विभाग में शूद्र ही काम कर रहे हैं। खेतीवारी करने वालों को भी शूद्र कह सकते हैं। खास कर उन किसानों को जो पेशेवर हैं। नेता भी शूद्र हैं क्योंकि वह देश का सबसे बड़ा सेवक है। देश की सेवा सबसे उत्तम कार्य समझा जाता है। इसलिए शूद्रों का कार्य सर्वोत्तम है। भारतवासी इसको समझते नहीं थे। अब समझने का वक्त आ गया है। उन्हें समझना चाहिए और शूद्रों को नीच नहीं कहना चाहिए। माता के नीचे के ही उदर से हम सब पैदा होते हैं। यह जाति माता सी है। पैदाइश और मौत भी इन्हीं के हाथों है। शूद्र जाति ही श्रेष्ठ जाति है।

सज्जनों, मुझे यह लिखते हुए दुःख होता है कि इस नगर में पाकिस्तान के भागकर लाखों की तादाद में शरणार्थी आए हुए हैं। वे ऐसी जगह में ठहरे हैं जहाँ उनके जान माल को खतरा है। वे रोते हैं और कहते हैं कि धर्म

बदल कर वे पुनः पाकिस्तान चले जावेंगे। वहाँ ही अच्छा रहेगा। वे कहते हैं कि मकान मालिक परेशान करते हैं। नगर के अधिकारी उनकी कोई खास फ़िक्र नहीं करते। खास कर उत्तर प्रदेश के लोगों से शिकायत है कि वहाँ के नागरिक उनके प्रति कोई हमदर्दी नहीं दिखाते हैं। उनका कहना है कि वे सुनते थे हिन्दुस्तान हिन्दुओं का है अतः उन्हें हर बात की सुविधा मिलेगी। लेकिन वे उल्टी ही पाते हैं। स्वधर्मी होने के नाते हर हिन्दू का फ़र्ज है कि उनकी मदद करे और अपना भाई समझे। उनसे मिले और सहानुभूति दिखलाये।

याद रखो, अगर इसमें लापरवाही हुई तो फल बुरा होगा। हम अपने धर्मावलम्बियों की ओर से लापरवाह रहे और धर्म प्रचार पर ध्यान नहीं दिया। जिसका नतीजा आज पाकिस्तान, कश्मीर और हैदराबाद है। सुना जाता है कि सीमा पर के कुछ सिन्धी शरणार्थी अपना जनेऊ उतार कर और चोटी कटवा कर चले गये। यही है हमारी हमदर्दी ?

बाटानगर

१४-८-४५

साढ़े छः बजे संध्या

आज मुझे यह अनुभव हो रहा है कि वैदिक काल में कैसा दृश्य रहा होगा। वेदों की ध्वनि कानों में गूँज रही है। अहा कैसा आनन्द आ रहा है। मन्त्रों को समझ नहीं रहा हूँ लेकिन ध्वनि सुनकर आनन्द का अनुभव कर रहा हूँ। ऐसा ही अनुभव गुरुकुल कांगड़ी में एक महात्मा से मिलकर हुआ था।

गरीबों, मुहताजों, अपाहिजों के वास्ते जो सड़कों पर मैदानों में पड़े रहते हैं, उनके लिए काम और आवास की सुविधा सरकार जुटावे। देश की गरीबी का प्रदर्शन बन्द कराये। बेघर होकर ऐसे लोग बड़े बड़े जुर्म जैसे चोरी, गिरहकटी, बच्चों का अपहरण, राहजनी आदि करते हैं जिनसे समाज में

बुराई फैलती है। इनका सुधार किया जा सकता है। देखते देखते इनमें विदेशी धर्म घुस आये हैं।

गरीबों में धर्म प्रचार से गरीबी दूर होती है और धर्म सुरक्षित रहता है। जो धर्म सिर्फ अमीरों के बीच ही रहता है, वह जाति विशेष का होकर सड़ जाता है, नष्ट हो जाता है। वही धर्म अच्छा है जिसे समान रूप से गरीब अमीर, छोटे बड़े व्यवहार में ला सकें। पूजा स्थान एवं सामाजिक समारोह में बिना भेद भाव के सभी उठ बैठ सकें, खा पी सकें।

हमारे हिन्दू धर्म के कुछ महान पुरुषों ने गया में जाकर बिना भेदभाव के एक दूसरे के साथ खाना खाकर बड़ा महत्वपूर्ण कार्य किया है। प्रायः जो लोग वहाँ जाते हैं, घर वापस आने पर शुद्धि कराते हैं, फिर विरादरी को भोज देकर शुद्ध होते हैं। ऐसे लोग सुधार और बिगाड़ दोनों मार्गों को नापते हैं। समझ में नहीं आता कि ये लोग ऐसा क्यों करते हैं ?

राम पैदा हो गया है। समय निकट है। पाकिस्तान का अन्त नजदीक है। बानर सेना संगठित हो रही है। मत घबड़ाओ। यह वही देश है जहाँ राम, कृष्ण, बुद्ध जैसे महात्मा पैदा हुए हैं।

क्षात्र धर्म जागने वाला है। देखो अयोध्यावासी उठ रहे हैं। श्रीराम की जन्मभूमि पर घण्टा, शंख बजाना प्रारम्भ हो गया है।

रावण के दल भारत में घूम रहे हैं। सावधान !

सावधान ! ! सावधान ! !

सामाजिक संगठन बनाये रखो। इसी में देश की भलाई है।

आज हिन्दू नागपुर और उसके आस पास घन कमाने की धुन में भटक रहे हैं। यहाँ क्रिश्चनिटी का प्रचार काफी है। 'हिन्दू समाज सुधार समिति' (Hindu Social welfare Society) की बड़ी जरूरत है। समाज सेवा संघ (S. S. S.) की स्थापना की बड़ी आवश्यकता है। जल्दी इन

संस्थाओं की स्थापना की जाय। 'समाज सेवा संघ' का प्रचार निम्न मध्यम वर्गीय व्यक्तियों (Lower Middle Class People) के बीच में सुधार का कार्य चालू करें। उच्च वर्गीय लोग (Upper Class People) इसका मखौल उड़ाकर टाल देंगे। उनको धन कमाने से फुर्सत नहीं है। निम्न वर्गीय लोग केवल पेट भरने के लिए कमाते हैं। वे उत्साही होते हैं। अतः वे काम में जुट जाएँगे।

पहले इसका प्रचार इस प्रकार किया जाय कि प्रत्येक जाति के लोगों को शरीक होने दें। वे अपना संगठन खुद करें। राजनीति से कोई मतलब नहीं हो। समाज सुधार की मुख्य मुख्य बातें ये हैं :-

१. विद्या के प्रचार से अज्ञानता दूर करना—पाठशाला, पुस्तकालय आदि की स्थापना।

२. सफाई का जीवन व्यतीत करना, रोगों से बचने का उपाय बतलाना, दवा और इलाज का प्रबन्ध करना।

३. सामाजिक संगठन—सहकारी समिति खोलना, बच्चों के लिए खेल कूद एवं मनोरंजन का प्रबन्ध करना।

४. स्वास्थ्य की उन्नति—दूध फल का सेवन, ब्रह्मचर्य का प्रचार।

५. विदेशों का ज्ञान कराना—सामाजिक, आर्थिक, मानसिक उन्नति का साधन बतलाना।

६. बुराइयों से बचने के लिए प्रेरित करना। इसी से समाज में कलह फैल रहा है, गरीबी बढ़ रही है।

७. अनाथ, विधवाओं और मुहताजों के लिए रोजगार खुलवाना।

८. अपनी सरकार से सुविधा प्राप्त करना जिससे सामाजिक सुधार, उन्नति हो।

नागपुर में किले के नीचे मैंने बहुत से खानाबदोशों को देखा। वे सब अलग अलग ठहरे हैं। कोई ईरानी परिवार हैं। चश्मे बेचते हैं। कई पुश्त से

यहाँ रहते हैं। पाकिस्तान नहीं जाना चाहते हैं। वे कहते हैं कि हिन्दुस्तान ही अब उनका घर हो गया है। इसलिए यहीं गुजर कर रहे हैं।

कई वनजारे हैं। ढोल बेचते हैं। औरतों वच्चों सहित रहते हैं। बाराबंकी (उ० प्र०) के रहने वाले हैं। पैसे इकट्ठा कर वापस जाना चाहते हैं।

कई परिवार खानदेश मरहठों के हैं जो बहुरूपिया का काम करते हैं। तरह २ की शकलें बनाकर घूमते हैं। हफ्तों गाँव २ में घूम कर कमाते हैं। ये सभी मुसलमान हैं। लीग पंथियों का इसमें काफी प्रचार है। ये सभी कहते हैं हमारा पाकिस्तान यहीं है। क्या करेंगे पाकिस्तान जाकर ?

बाराबंकी के वनजारे भी मुसलमान हैं। ये भी लीग के हिमायती हैं। बहुत से हिन्दू भी खानाबदोश हैं। उनकी हालत भी मुसलमानों की ही है।

ईरानी वच्चे भी उर्दू पढ़ते हैं। फारसी बोलते हैं। मजहबी किताब पढ़ते हैं।

बहुरूपिया तो मरहठी हैं ही। टूटी फूटी उर्दू बोलते हैं। वे कहते हैं कि सनीमा के गाने उर्दू में ही हैं। खेद है इस जगह में हिन्दुओं की कोई सोसाइटी काम नहीं कर रही है।

अब समय सावधानी का आया है। इस नये युग में हमें बहुत कुछ करना है;—

१. हमें अपने उन भाइयों को जो जाति से निकाले गये हैं, जो सदियों से अलग हैं, जो रोटी-बेटी का सम्बन्ध करना चाहते हैं, जो अब भी अपने प्राचीन गौरव को समझते हैं; अपने सीने से लगावें और धार्मिक, सामाजिक अधिकार उन्हें दें। तभी हम तरक्की कर सकते हैं।

२. हम व्यवहार में किसी से जाति पांति नहीं पूछें कि किस जाति के हो और कितनी आदमनी है ? इससे एक दूसरे के प्रति हीनता का भाव उत्पन्न होता है।

३. हम पुरुषार्थ से जितना धन पैदा करते हैं, उसका दानाँ हिस्सा धर्म जाति के उत्थान के कार्य में लगावें ।

४. हमारे प्रचारक देश विदेश में फैलें । सुख और शान्ति का उपदेश दें । इससे मैत्री भाव उत्पन्न होगा ।

५. हम अपने प्राचीन गौरव को याद करें । द्वीप द्वीपान्तरों में हमारे गौरव के जितने चित्र मिलते हैं, उनके लिए एक साहित्य केन्द्र की स्थापना कर सभी भाषाओं में धर्म सन्देश लिखा कर प्रचार करें । जिससे आर्य संस्कृति संसार में फैले ।

६. हम शान्ति और प्रेम से अपनी चक्रवर्ती आर्य संस्कृति को फैलायें । जिससे आपस में भेद भाव रहित प्रेम बढ़ेगा और किसी को कष्ट नहीं होगा ।

७. जीवन का लक्ष्य ईश्वर प्राप्ति है, जिसे योग द्वारा प्राप्त करें । यह सन्देश सबको सुनावें । इसका प्रचार करें ।

×

×

×

विदेशों में जाना बहुत अच्छा है । यदि वहाँ का सदुपयोग हो और बहुत कुछ सीखकर वापस लौटें । इससे अपने देश का काम आगे बढ़े । मेरी अभिलाषा तो यही थी कि उद्योगों की उन्नति हो । यही देश की सच्ची सेवा है । तरह तरह के कल पुर्जों से ही देश की आर्थिक उन्नति हो सकती है ।

करोड़ों अरबों रुपये के कल पुर्जे और रासायनिक द्रव्य बाहर से स्वदेश आते हैं । यह रकम बचाई जा सकती है । इसी विचार से मैंने यह योजना बनायी है । देखें, कहाँ तक इसकी पूर्ति होती है । भगवान का भरोसा है । यदि वे चाहते हैं कि पूर्ण हो तो वह अवश्य पूर्ण होगी । मेरा तो पूर्ण विश्वास है । ईश्वर सहायता करेंगे ।

२५-११-५३

—रघुनन्दन प्रसाद

कहानी

सा

देश

तारे

कर

ति

वें ।

त ।

रें ।

ओर

मेरी

सेवा

देश

नना

प्रदि

है ।

साद

कहानी**दुःख और सुख तो अपना साथी है**

रामकुमार एक दफ्तर में क्लर्क है। एक दिन सुबह पोस्टमैन तार लाता है। तार खोलने पर रामकुमार पढ़ता है कि “मोहन बेटा तीन दिन की बीमारी में मर गया, चले आओ।” तार पढ़ते ही रामकुमार के तो होश गुम हो गये। वह रोने लगा। पड़ोस में ही उसके आफिस का एक और क्लर्क रहता था उसका नाम कृष्ण बाबू है। उसके घर के बच्चे वगैरह रामकुमार के पास आ गये। उनके पूछने पर रामकुमार ने तार सामने रख दिया। तार देख कर कृष्ण बाबू बहुत चिन्ता में पड़ गया क्योंकि रामकुमार का वह दिली दोस्त था। उसने रामकुमार को बहुत समझाया व धीरज दिया। किसी तरह चुप कराया। शाम को जाने वाली गाड़ी में उसको बिठा दिया। दूसरे दिन सबेरे रामकुमार स्टेशन पर उतरा। उसका गाँव सात आठ मील था। पैदल ही घर के लिए चल दिया। रास्ते में एक बाग था, जहाँ एक बहुत बड़ा पेड़ था। उसके नीचे वह बैठ गया। देखता है कि चिड़ियाँ चहचहा रही हैं। एक डाल से दूसरी डाल पर फुदक रही हैं। दूसरी ओर सूर्य निकलने वाला है। हलकी सुनहली रोशनी पहाड़ियों पर पड़ रही है। कुदरत के इस नजारे को देखकर रामकुमार अपने गम को भूल जाता है। वह कुदरत के इस नजारे को देखता रहता है। इतने में ही उधर से एक बारात निकली। बाजे की आवाज सुन कर उसका ध्यान उधर चला गया तो दूल्हा को देखने के लिए वह उठ खड़ा हुआ। दूल्हे की सजावट को देख कर वह मुस्करा पड़ा और रामकुमार को अपनी साथी की याद आ गयी। बरातियों के साथ वह भी चल पड़ा। इस समय उसका रंज वगैरह रफूचककर हो गया। उसके दिमाग में अब और तरह के विचार आने लगे। उसने सोचा कि भगवान ने दुनिया में आदमी को भेजा

है कि दुःख-सुख दोनों का भोग करते हुए जीना सीखे। जब वह घर पहुँचा तो घर के सभी कुटुम्बी जन रामकुमार को देख कर रोने लगे। पर रामकुमार बिल्कुल नहीं रोया। चुपचाप ही नहीं बैठा रहा बल्कि खुद समझाता रहा कि सुख और दुःख तो हमारा साथी है। यह तो परमात्मा की देन है। रामकुमार ने कहा कि जिस मालिक ने बेटा दिया था, उसी ने फिर उसको ले लिया तो हमें इसका अफसोस नहीं करना चाहिए। और भी उसने तरह तरह से लोगों को समझाया। ये बातें सुनकर सबको ताज्जुब हुआ कि इसको इतना ज्ञान कहाँ से आ गया। लेकिन सब लोग चुप रहे। रामकुमार फिर अपनी स्त्री तथा बच्चों को तैयार करके दूसरी गाड़ी से नौकरी पर वापस जाने के लिए रवाना हो गया। शहर पहुँचने पर उसका दोस्त रामकुमार के विचारों को सुन कर मन में सोचने लगा कि सच तो यही है कि यह संसार एक माया नगरी है। उसमें आदमी को रत नहीं होना चाहिए, वरन् विरक्त रह कर अपना कर्त्तव्य करते रहना चाहिए। अब दोनों साथी खुशी खुशी रहने लगे।

२४-१०-१९१९

कात्यांजलि

क्रम

१. हे विश्वदेव सब विघ्न हरो
२. प्रभु की आरती मैं गाऊँ
३. भज अब ओम ओम बन्दे
४. आ जा, मेरे प्रिय प्रभु आ जा
५. मेरे प्यारे प्रभु
६. अन्तर्मन मेरा
७. हरिनाम बोल, हरिनाम बोल
८. जीव कहाँ से आया
९. एक नाम हरि प्यारा
१०. खींच नहीं पाता अब
११. दुख देख लिया अब
१२. अब क्यों लगाते हो देर
१३. धर्म कभी अधम नहीं होता
१४. चेत रे मन चेत
१५. न अमीर हूँ, न गरीब हूँ
१६. नेकी कर दुनिया में
१७. जय भीम बोल, जय भीम बोल
१८. लखकर सुन्दर देश विदेशी
१९. जिस देश में गया था
२०. अन्धकार जीवन में छाया
२१. अजब बनी है प्रभु की नगरी
२२. करनी का फल अब भोग
२३. चलो री सखी दर्शन कर लें
२४. जिस देश में
२५. भजन करो मन प्रभु का नाम
२६. हवेलियाँ बहुत बनीं

हे विश्व देव

हे विश्वदेव सब विघ्न हरो,
अन्तर के दुर्गुण दूर करो ।

मैं सदा सुखद शुभ कर्म करूँ,
आचरण शुद्ध, सन्मार्ग चलूँ ।

तेरी मर्जी पर है यह जग,
तेरी महिमा करती जगमग ।

कण कण में तेरी ही खुशबू,
अगम अनादि अनन्त स्वयंभू ।

हे प्यारे प्रभु तू ही दयालु,
दीनबन्धु है तू ही कृपालु ।

तुझ पर आश्रित है संसार,
भू से नभ तक एक ही तार ।

कैसे अब मैं तुझ तक आऊँ,
बिना पुजापा तुझे रिझाऊँ ।

‘रघुनन्दन’ पहुँचेगा जरूर,
मार्ग नहीं है अब तो दूर ।

प्रभु की आरती मैं गाऊँ

प्रभु की आरती मैं गाऊँ ।

गगन-थाल हाथ में लेकर,
तारों के मोती सजाऊँ,

ज्योतिष है भूमंडल सारा,
रवि शशि की जोत जगाऊँ ।

अनहद नादित सृष्टि सारी,
क्यों घंटा घड़ियाल बजाऊँ,

‘रघुनन्दन’ तेरे चरणों पर,
श्रद्धा के सुमन चढ़ाऊँ ।

प्रभु की आरती मैं गाऊँ ॥



भज अब ओम ओम बन्दे

भज अब ओम ओम बन्दे,
तज कर सब विचार गन्दे ।

मत कह यह जग घर अपना,
सब हैं मतलब के संगे ।

यह ठगनी माया मोहनी,
नाच नचावत है नंगे ।

माया का जो जाल बिछा,
अब काटो उसके फंदे ।

‘रघु’ सबसे अब प्रीति करो,
मिट जायेंगे सब द्वन्दे ।

भज अब ओम ओम बन्दे,
तज कर सब विचार गन्दे ।

आजा मेरे प्रिय प्रभु आजा

आजा मेरे प्रिय प्रभु आजा,
मेरे मन मन्दिर में छा जा ।

सत्य का भस्म रोज लगाऊँ,
दिव्य ज्ञान का दीप जला जा ।

द्वार खोल नित अपने मन का,
दर्शन को मैं बाट निहारूँ ।

‘रघुनन्दन’ को झलक दिखा जा,
आ जा मेरे प्रिय प्रभु आ जा ।

मेरे प्यारे प्रभु

मेरे प्यारे प्रभु,

मेरे प्यारे ।

तू ही सदा सुखदाई है ।

गिर गया हूँ यहाँ,

ठोकर खाकर,

बचा ले मुझे, दुहाई है ।

क्षण भंगुर जीवन

नाशवान जग,

समस्त सृष्टि दुखदाई है ।

वह कीर्ति नहीं की

जीवन भर में,

जिसे वेदों ने बताई है ।

‘रघुनन्दन’ मत कर

घृणा किसी से,

किसी से बैर न मित्ताई है ।

अन्तर्मन मेरा

अन्तर्मन मेरा,
मन मेरा ।
सुबह शाम तू कर,
निज प्रभु का
ध्यान मग्न होकर
मन फेरा ।
यदि नित ध्यान धरे
प्रिय प्रभु का
दुख दरिद्र कटे
सब तेरा ।
सद्गुरु चरण शरण
'रघुनन्दन'
मिटे आवागमन
का फेरा ।
अन्तर्मन मेरा
मन मेरा

दुख देख लिया, सुख भोग लिया

दुख देख लिया, सुख भोग लिया,

अब तो चेतो रे भाई ।

हरिनाम जपो, सुख धाम लखो,

यह जिनगी सफल बनाई ।

शुभ कर्म करो, पर दुःख हरो,

कर लो अब धर्म-कमाई ।

पा मनुज जनम, मत बनो अधम,

क्यों पग पग ठोकर खाई ।

सतगुरु महिमा, बढ़ती गरिमा,

‘रघु’ मिटती जगत हँसाई ।

अब क्यों लगाते हो देर

अब क्यों लगाते हो देर,

मुखड़ा दिखा जा, दिखा जा ।

प्रीतम क्यों करते हो देर,

मनवाँ में जोत जला जा ।

आसन मार मौन बैठा हूँ,

ओंकार शब्द सुना जा ।

सत्गुरु हिय में आ बैठे,

माया को दूर भगा जा ।

‘रघुनन्दन’ दुर्व्यसनों के वन,

जल्दी अब आग लगा जा ।

अब क्यों लगाते हो देर,

मुखड़ा दिखा जा दिखा जा ।



धर्म कभी अधम नहीं होता

धर्म कभी अधम नहीं होता,

सुकर्म ही धर्म कहाता है ।

वह नर जग में क्या कर सकता,

जो पथ ही में पछताता है ।

धीरज धर कर निज कर्म करो,

जो वेद महान बताता है ।

छोटे बड़े सभी का आदर,

मान करो जो घर आता है ।

‘रघुनन्दन’ वही अमर बनता,

जो सत् पर बलि हो जाता है ।

धर्म कभी अधम नहीं होता,

सुकर्म ही धर्म कहाता है ।

चेत रे मन चेत !

चेत रे मन चेत !

दुख भरा संसार सारा,
मोह माया अगम धारा,
पार जाने का नहीं संकेत,

चेत रे मन चेत !

पान कर सब भंग गोला,
बन गया है मस्त भोला,
चढ़ गया है रंग सब पर श्वेत,

चेत रे मन चेत !

स्वार्थ का झगड़ा रहेगा,
'रघु' हमेशा ही कहेगा,
ज्ञान बिन जीवन हमारा रेत,

चेत रे मन चेत !

हरिनाम बोल, हरिनाम बोल

हरिनाम बोल, हरिनाम बोल ।

बेफिक्र सदा हम रहते थे
आनन्द अमिय रस चखते थे
सुख भोग रहे थे हम अनमोल ।

माया जाल देख कर सुन्दर
उलझ गये हम लोगों के पर
वे खुले नहीं, थक गए खोल ।

दुख भोग रहे हैं जीने का
कुंठा के आसव पीने का
ओढ़े हैं हम यह घुणित खोल ।

‘रघुनन्दन’ एक उपाय यही
वह कर्म करी जो नेक सही
नित नाम रटो, प्रभु का अमोल ।

हरिनाम बोल, हरिनाम बोल ।

३०-७-१९४६

जीव कहां से आया, ?

जीव कहां से आया, उसे कहां को जाना ?
भ्रम में भटक पड़ा है ।

मृत्यु लोक से व्याया स्वर्ग लोक को जाना,
पथ में अटक अड़ा है ।

माया का बाजार लगा है यहां चतुर्दिक,
भटका जीव खड़ा है ।

वैदिक कर्म किए बिन जग में किसी जीव को
मिला न अमिय घड़ा है ।

'रघुनन्दन' यदि सद्गुरु बड़ कर दिखलावे पथ,
निश्चय मोक्ष घरा है ।



एक नाम हरि प्यारा है

एक नाम हरि प्यारा है ।

झूठा है सब नाता रिश्ता,
जीव सभी से न्यारा है,
एक नाम हरि प्यारा है ।

धन दौलत औ माल खजाना,
अन्तकाल में सब बेगाना,
कोई नहीं सहारा है ।

लादे चले संग डोली,
सत्य नाम की है बोली,
भस्म हुआ तन सारा है ।

पंच तत्व का मिटा झमेला,
हरि से मिलता हंस अकेला,
'रघु' प्रभु एक सहारा है ।

एक नाम हरि प्यारा है ।

३०-७-४६

खींच नहीं पाता अब

खींच नहीं पाता अब,
गाड़ी यह पापन की ।

काम क्रोध का बोझा,
उस पर पथ है कच्चा,
झड़ी लगी सावन की ।

कर्म कभी नेकी का,
किया नहीं जीवन का,
निन्दा की भागन की ।

पाकर प्रभु आज्ञा अब,
'रघु' तुम शुभ कर्म करो,
घड़ी नाम जापन की ।

खींच नहीं पाता अब,
गाड़ी यह पापन की ।

न अमीर हूं न गरीब हूं

न अमीर हूं न गरीब हूं,

प्रभु भक्त किन्तु जरूर हूं ।

दिल में बसा महबूब है,

न नजदीक हूं न दूर हूं ।

सब कर्म हैं अर्पित तुम्हें,

तब नूर से भरपूर हूं ।

छ्वाहिश यही है 'रघु' तुझे,

पाऊँ मगर मजबूर हूं ।

न अमीर हूं न गरीब हूं ।

प्रभु भक्त किन्तु जरूर हूं ।

नेकी कर दुनिया में तू दोनों हाथों से

नेकी कर दुनिया में तू दोनों हाथों से,
कर्मवीर मत बन प्यारे केवल बातों से ।

सदा एक सा ही तेरा व्यवहार बना हो,
देश जाति औ राष्ट्र-धर्म से प्यार घना हो ।

जीवन हो पावन और सार्थक सभी सफर हो,
माँ वहनों बेटी पर हरदम एक नजर हो ।

जैसे जैसे जीवन होगा शुद्ध तुम्हारा,
तुमको प्रभु का लोक लगेगा उतना प्यारा ।

जीवन में निष्काम कर्म यदि रोज करेगा,
निश्चय ही उत्तम फल तुझको सदा मिलेगा ।

‘रघुनन्दन’ सत्कर्म सृष्टि का महत् धर्म है,
इस रहस्य को समझो इसमें छिपा मर्म है ।



जय भीम बोल, जय भीम बोल

जय भीम बोल, जय भीम बोल ।

भीमराव अम्बेदकर आये,

सबको निज करतब दिखलाये,

वाणी गुँजी उनकी अमोल ।

सदियों से हम थे गिरे हुए,

ऊँचे वर्णों के जुल्म सहे,

बाँधे जातीयता का ढोल ।

बढ़कर सबको तुरत जगाया,

राजनीति का राज बताया,

खोल दिया हिन्दू का पोल ।

हम हो बैठे विद्या विहीन,

सब कुछ खोकर बन गए दीन,

मुख से कभी न फूटे बोल ।

आओ हम इन्सान बनेंगे,

ज्ञानार्जन कर विद्वान बनेंगे,

उर को देंगे सब हेतु खोल ।

दयानन्द जी जग में आये,

छूत छात के रोग मिटाये,

ऊँच-नीच का फाड़ा खोल ।

घर घर में यह वीण बजा दो,

भीमराव का हुक्म सुना दो,

करो संगठन औ, सचबोल ।

ऋषियों की औलाद हमीं हैं,
हुए किन्तु बर्बाद हमीं हैं,
हुआ हमारा सब कुछ गोल ।

हम भी जिस दिन शास्त्र पढ़ेंगे,
ऊँचे ऊँचे ग्रन्थ गढ़ेंगे,
पूर्ण करेंगे ऋषि का कौल ।

हम में ही ऋषि व्यास हुए हैं,
मुनिवर कपिल कणादि हुए हैं,
वाल्मीक से कवि अनमोल ।

संत कवीर और रैदासा,
ब्रह्म ज्ञान को देकर भाषा,
खोल गए सब अनबुझ पोल ।

‘रघुनन्दन’ नित सबसे कहता,
दुर्बल ही हरदम दुख सहता,
अपने पौरुष को भी तोल ।
जय भीम बोल, जय भीम बोल ।



लख कर सुन्दर देश विदेशी

लख कर सुन्दर देश विदेशी,
धुस आये जवरन परदेसी ।

जात-पाँत का भेद बढ़ाया,
ऊँचा बन कर हमें सताया ।
ठेकेदार बने मन्दिर के,
लड्डू पेड़े खाये थिरके ।

प्रथा अवैदिक तुरत चलायी,
अबलाओं को चिता चढ़ायी ।

ऋषिसूत को चांडाल बताया,
कला कर्म को नीच जताया ।

जोर जुल्म का कर्म चलाया,
रक्त दान का धर्म बनाया ।
देव देवियों पर कुर्बानी,
नरमेघों की करुण कहानी ।

पंडित पोथी-पत्रा धारी,
दान माँग कर बने भिखारी ।

कर्म विहीन बना जब भारत,
हर प्रकार से होकर आरत ।

गुरुवर दयानन्द जी आये,
सबको निज अधिकार बताये ।
वेद पाठ अधिकार सभी का,
सिखलाया यह नया तरीका ।

‘रघुनन्दन’ तज भेद भाव अब,
सुखी राष्ट्र भारत होगा तब ।

९-८-१९४६

जिस देश में गया था

जिस देश में गया था, वह हाल मैं सुनाता,
 अब ध्यान से सुनो तुम, जो आज मैं बताता ।
 उनकी है एक भाषा और एक राष्ट्र अपना,
 देशहित नशे में फूला नहीं समाता ।
 झंडा जो मुल्क का है, उसका सभी उपासक,
 हर एक मर्द औरत, झंडे को सिर झुकाता ।
 आता है देश पर जब, खतरा कभी अचानक,
 हर एक मर्द-औरत झंडे तले है आता ।
 करते हैं औरतों की इज्जत हरेक दिल से,
 कोई अगर सताता निश्चय सजा है पाता ।
 कोई नहीं है लगता उस देश में भिखारी,
 दस बीस रुपए दिन में, मजदूर है कमाता ।
 न्यूयार्क बोस्टन में, हैं कई बड़ी दुकानें,
 लाखों का माल जिनमें है बेहिचक समाता ।
 सौ मंजिलों के बनते, हैं अनगिनत मकानें,
 बिजली की रोशनी से हर एक जगमगाता ।
 हर रोज करोड़ों की, अखबार यहाँ विकती,
 पढ़ कर जिन्हें हर आदमी ज्ञान को बढ़ाता ।
 न छूत-छात जाने, न जात-पाँत माने,
 है एक राष्ट्र के हित सबका घनिष्ठ नाता ।
 यदि चाहते हो तुम भी भारत करे तरक्की,
 अब छूत-छात छोड़ो, भारत सभी की माता ।

रचना स्वामी सत्यदेव परिव्राजक

अंधकार जीवन में छाया

अंधकार जीवन में छाया ।

कर्म करो जो बहुत जरूरी,
मिट जायेगी प्रभु की दूरी,

तन की शाम, बुढ़ापा आया,
अंधकार जीवन में छाया ।

काम क्रोध को मन से त्यागो,
माया मद से अब तो जागो,

व्यर्थ अभी तक समय गँवाया,
अंधकार जीवन में छाया ।

‘रघुनन्दन’ प्रभु से प्रेम यही,
शुभ कर्म करो जो सदा सही,

भटका जो, कुछ कभी न पाया,
अंधकार जीवन में छाया ।

अजब बनी है प्रभु की नगरी

अजब बनी है प्रभु की नगरी ।
 पंचकोश का किला बना है,
 जिसमें जीव बना है राजन,
 अहंकार को बना सहायक,
 महामंत्री बना चतुर मन,
 कर्म इन्द्रियों के फाटक पर,
 ज्ञान इन्द्रियाँ लगतीं प्रहरी ।
 बिछी हुई नाड़ियाँ अनेकों,
 मल मूत्रों से भरी हुई हैं ।
 इंगला पिंगला के तारों से,
 देह-यष्टि यह जड़ी हुई है ।
 मस्तक में विद्युत रहती है,
 जहाँ सदा उठती द्वय लहरी ।
 षट्-चक्रों के सब दल सुन्दर,
 दिव्य ज्योति से हैं उजियारे,
 मेरु दण्ड की बजी बाँसुरी,
 सोहं सोहं की अनकारें,
 जाग्रत, स्वप्न, सुसुप्ति तीनों,
 पर आश्रित विधान की ठहरी ।
 उर में प्रभु प्रतिनिधि बैठे हैं,
 जीव कर्म के देखन हारे,
 'रघुनन्दन' चढ़ प्राण सवारी,
 पहुँचेंगे प्रिय प्रभु के द्वारे ।
 ओमकार बन कर मेरे मुख,
 देखो तुरिया ही है ठहरी,
 अजब बनी है प्रभु की नगरी ।

मन करनी का फल अब भोग

मन करनी का फल अब भोग ।
जैसा कर्म किया इस जग में,
फल वैसा पाते सब लोग ।

उल्टा कर्म जान कर करते,
अन्य भाइयों का हक हरते,
जकड़े अहंकार के रोग ।

चिन्तन नहीं किया तू भाई,
नहीं कभी की अपर भलाई,
सत् का किया न कभी प्रयोग ।

प्रभु का कर यदि नित अभिनन्दन
निश्चय फल पाये 'रघुनन्दन',
छोड़ो मत अब यह संयोग ।
मन करनी का फल अब भोग ।



चलो री सखी दर्शन कर लें

चलो री सखी दर्शन कर लें ।
हिय आंगन में सत्गुरु आये,
अश्रुधारा से मैं पग धोऊँ,
सादर पथ में पलक बिछाए ।

माया कुटनी खड़ी किनारे,
सुरत अपनी दिखा रिझाए ।
मुरली धुन मन हो गया मस्त,
पग में तुरत सुरत लिपटाए ।

राग द्वेष काबू में आए,
लोभ मोह हो गए पराए ।
काम क्रोध सब भस्म हो गए,
सत्गुरु ने जब अंग लगाए ।

निर्मल हुआ सुरत गुरु पाकर,
ब्रह्मानन्द तुरत ही पाए ।
'रघुनन्दन' अलमस्त हो गया
क्या क्या देखा किसे बताए ।

२४.८.१९५३

जिस देश में

जिस देश में,
 जिस जाति में,
 न संगठन न सुविचार है ।
 वह राष्ट्र है,
 बिलकुल गिरा,
 उसका नहीं निस्तार है ।
 रूढ़ियाँ हैं,
 सब पुरानी,
 हल बैल ही आधार है ।
 भाग के बल,
 जी रहे,
 कोई न आविष्कार है ।
 उस देश के,
 सब लोग का,
 मुश्किल बहुत उद्धार है ।
 पुरुषार्थ से,
 लो काम यदि,
 कोई नहीं बेकार है ।

भजन करो मन प्रभु का नाम

भजन करो मन प्रभु का नाम ।

भव सागर से पार करेगा,
पहुँचा देगा वह निज धाम ।

चितन करो हमेशा प्रभु का,
मत बैठो अब तुम बेकाम ।

लोभ-मोह का जाल काट कर,
कर्म कगे प्रतिक्षण निष्काम ।

मन से तुम सच्चिदानन्द का,
गायन करो सुबह औ शाम ।

‘रघुनन्दन’ है प्रभु का प्रेमी,
रटता हरदम प्रभु का नाम ।

भजन करो मन प्रभु का नाम ।

हवेलियाँ बहुत बनी

हवेलियाँ बहुत बनीं और बनती जायेंगी,
मुल्क की विगड़ी हवेली नहीं बन पायेगी ।

इसलिए चेतो हिन्दू भाइयो अभी से तुम,
अगर देश टुकड़ों में बँटा, आफत आयेगी ।

अफसोस है कि हम दयानन्द को भूल बैठे,
न जाने कब तुम्हें उनकी याद आयेगी ।

गरीबी में ही ब्रह्मानन्द प्राप्त होता है,
शोषड़ी मुबारक मुझको, गुजर हो जायेगी ।

मगर यह जाहिर है इस दुनियाँ में 'रघुनन्दन',
गरीबों की आवाज न यहाँ सुनी जायेगी ।



ॐ नमो भगवते वासुदेवाय

विष्णु विष्णु विष्णु विष्णु विष्णु
विष्णु विष्णु विष्णु विष्णु विष्णु

विष्णु विष्णु विष्णु विष्णु विष्णु
विष्णु विष्णु विष्णु विष्णु विष्णु

विष्णु विष्णु विष्णु विष्णु विष्णु
विष्णु विष्णु विष्णु विष्णु विष्णु

विष्णु विष्णु विष्णु विष्णु विष्णु
विष्णु विष्णु विष्णु विष्णु विष्णु

विष्णु विष्णु विष्णु विष्णु विष्णु
विष्णु विष्णु विष्णु विष्णु विष्णु

ENGLISH POEMS

1

God's glory, world mistries.
on the path of life
no one knows of miseries
when walking on sharp knives.

Politics and religion
pointing opposite directions
never meet together

Peace, peace ever come peace
before God, surrender
on your knees.

2

Great men of the world
and poors on the street
on walks of life
they often meet.

With joy and sorrows
no one is spared
in conscience and dream
they are equally dead.

How strange it is,
the man has forgotten God
in love, in faith, in belief
towards Almighty God.

Look ahead O, man
your future is bright
fortunes are made
by doing things right.

Rocks of the hills, dug out,
tunnels made, and
bridges by sinking raised.

great things accomplished
by devoted hard working
days of happiness sure to come
go on working day and night.

do your duty
don't be affraid
no man's efforts
ever seen unpaid.

4

Long live Gandhi the great
Long live Jawaharlal
happiness and blessings ahead
all glories will go high,

Brotherhood and kinship
one day to be found,
no hatred, no race feeling
when trumpet of truth will sound.

Endeavor with patience to the last,
do or die, O' impatient man.

पं० आचार्य प्रियव्रत वेद
वाचस्पति
स्मृति संग्रह

Life is like a stream of water,
flowing in the river,
Joy and happiness are like bubbles,
stand for a moment and disappear.

Storm of troubles comes in wave,
boldly, willingly and patiently bear
the duty of man is salvation.
die in efforts, never fear.

8783

Q — 22-1-05

75.1,121:4



9191

